CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

भट्टारक आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित

सुभाषितावली

सम्पादक

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी

१०८ आचार्यश्रीअजितसागर जी महाराज

अनुवादक

डॉ० पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य

संयोजन

प्रतिष्ठाचार्य डॉ० आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री कोलकाता

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं आचार्य वर्द्धमान सागर स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव की अनुपम भेंट २०१९-२०

भट्टारक आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित

सुभाषितावली

सम्पादक :

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी

प०पू० १०८ मुनिश्रीअजितसागर जी महाराज

अनुवादकर्ता :

डॉ० पं० पन्नालाल जी जैन साहित्याचार्य

संयोजन

प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री, कोलकाता

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ	-	**सुभाषितावली**
ग्रंथकार	-	**भट्टारक आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित**
सन्दर्भ	-	चा. च. आ. श्री शान्तिसागर जी मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं आचार्य वर्द्धमान सागरजी (स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव-२०१९-२०)
मागदर्शन एवं सम्प्रेरणा	-	जगद्गुरु कर्मयोगी स्वस्तिश्रीचारुकीर्ति भट्टारक स्वामी श्री क्षेत्रश्रवणबेलगोला
ग्रन्थमाला सम्पादक	-	डॉ. श्रेयांसकुमार जैन-वड़ौत डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री-कोलकाता
संस्करण	-	प्रथम २०१९-२०
प्रतियाँ	-	१०००
मूल्य	-	१००.००
संयोजन	-	प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री, कोलकाता
पुण्यार्जक	-	**'अनुप्रेक्षा' दिग० जैन महिला मण्डल** **काकुरगाछी, कोलकाता**
प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान	-	आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन १/२ दर्पनारायण टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००६ 9831008868, 9903080975

ई-मेल-**shantisagar.foundation@gmal.com**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

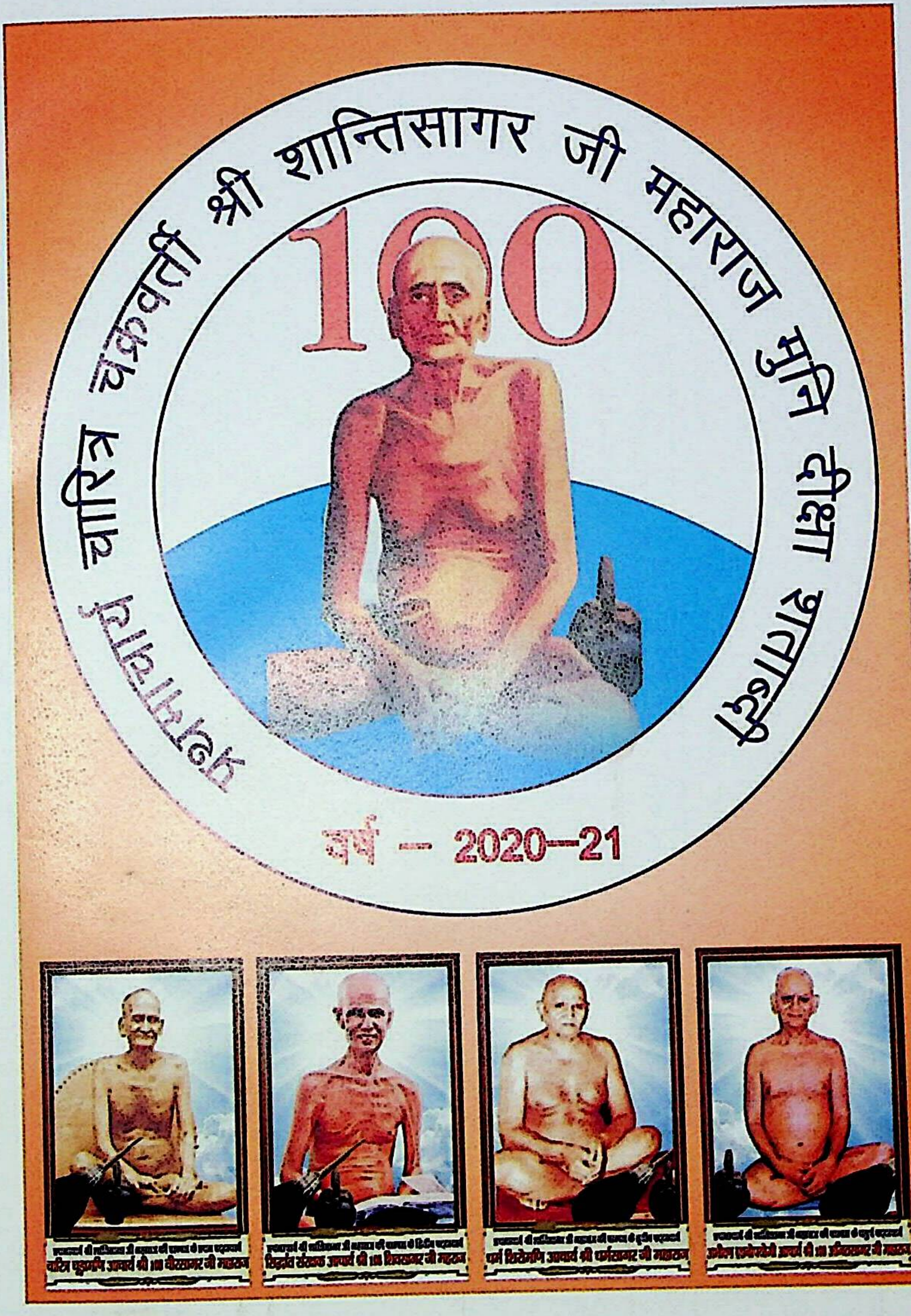

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वात्सल्यवारिधि, जिनधर्म प्रभावक, राष्ट्रगौरव
आचार्य १०८ श्री वर्द्धमान सागर जी महाराज का
जीवन परिचय -

जन्म नाम	-	यशवंत पंचोलिया
जन्म तिथि	-	१८ सितम्बर १९५० ई. (भादवा सुदी ७) उत्तम आर्जवधर्म
जन्म स्थान	-	सनावद (म.प्र.)
पिता का नाम	-	श्री कमलचन्द्र जी पंचोलिया
माता का नाम	-	श्रीमती मनोरमा देवी
लौकिक शिक्षा	-	बी.ए. प्रथम वर्ष
ब्रह्मचर्य व्रत	-	आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से
शिक्षा प्रदाता	-	आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागर जी महाराज
मुनि दीक्षा	-	२४ फरवरी १९६९ विक्रम-संवत् २०२४, सोमवार, फा.शु. ८, श्री महावीरजी
दीक्षा गुरू	-	आचार्य शिरोमणि १०८ धर्मसागर जी महाराज
आचार्य पद प्रदाता	-	आचार्यरत्न १०८ श्री अजितसागर जी महाराज
आचार्य पद	-	२४ जून १९९०, पारसोला (राज.) आषाढ़ शुक्ल २ पट्टाचार्य : २०वीं सदी के प्रथमाचार्य प.पू.चा.च. १०८ श्री शांतिसागरजी महाराज की अक्षुण्ण मूल बा.ब्र. परंपरा के पंचम पट्ठाचार्य
विशेष	-	कुल चातुर्मास-४९, दीक्षा-७७, मुनि-२७, आर्यिका-२८, क्षुल्लक-१२, क्षुल्लिका-९, ऐलक-१, पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ-५१, समाधि-४१
पावन सान्निध्य	-	गोम्टेश्वर बाहुबली महामस्तकाभिषेक में १९९३,२००६,२०१८
यात्राएँ	-	सिद्धभूमि सम्मेदशिखरजी, चंपापुरजी, सिद्धवरकूटजी ऊन (पावनगिरि), बावनगजाजी, तारंगाजी, कुण्डलपुरजी, गिरनारजी, कुण्डलगिरिजी आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

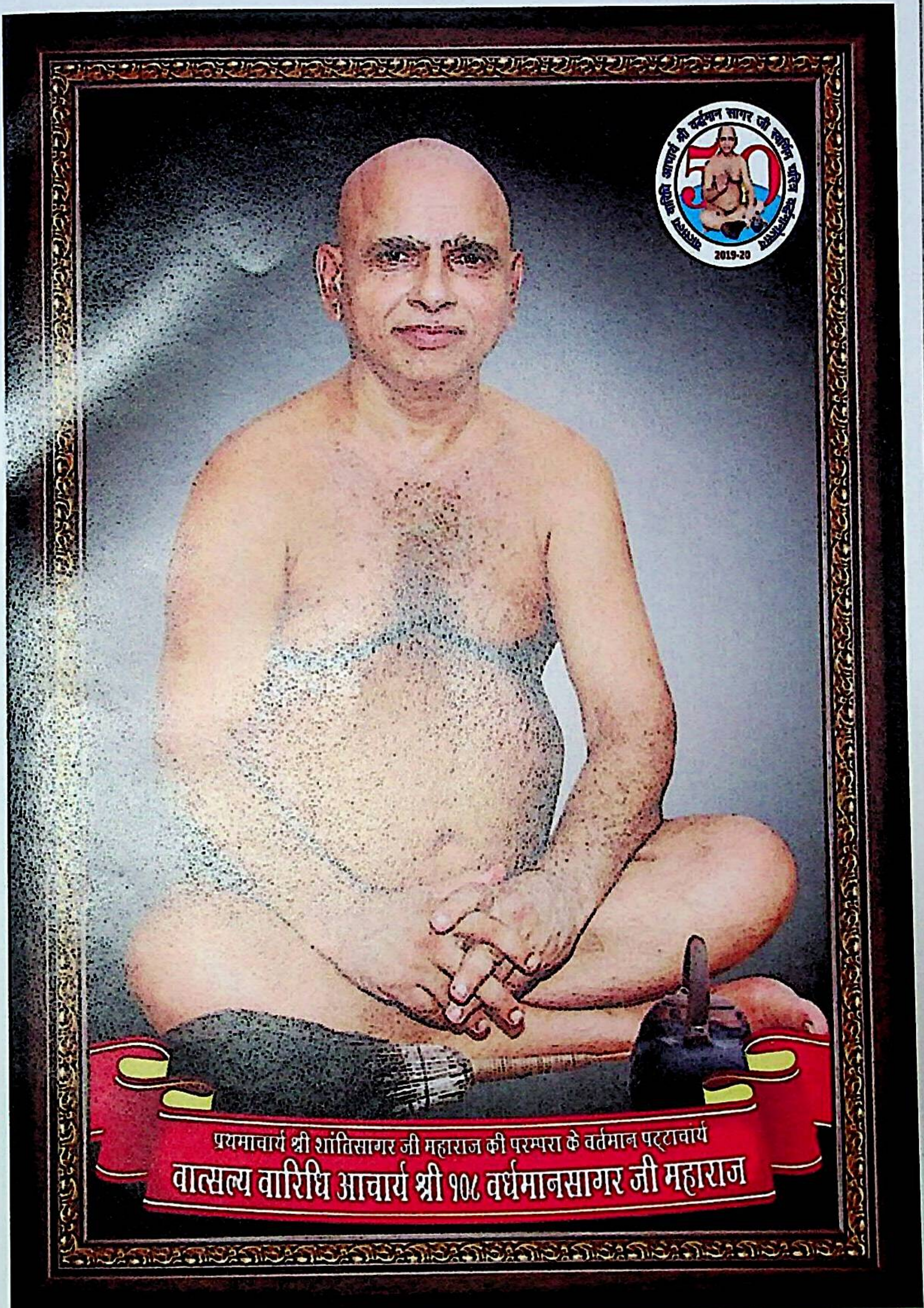

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीसवी सदी के निर्मल सम्वाहक

श्रमण परम्परा के पुनरुद्धारक

प्रथमाचार्य, चारित्रचक्रवर्ती

श्री शान्तिसागर जी महाराज

मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं

की अक्षुण्ण वाल ब्रह्मचारी पट्ट

परम्परा के सफल सारथी

आगमानुसार चर्या के पोषक,

राष्ट्र गौरव, वात्सल्यवारिधि

आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज

के स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव

पर शत् शत् नमन करते हुए उनके

ही कर कमलों में यह ग्रन्थराज जी सादर समर्पित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी कलम से.....

प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री
कोलकाता

श्रमण परम्परा के संवाहक वीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज की मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं पचास वर्ष मुनि दीक्षा के रूप में "स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव" में यह ग्रन्थ हम जिनके श्री कर कमलों में समर्पित कर रहे हैं उन महामना आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी की कीर्ति पताका सारे विश्व में फहरा रही है। वह जैनाचार्य हैं, वात्सल्य के सागर है, उनका प्रेम, उनकी करुणा और उनकी सम्वेदनशीलता किसी धर्म विशेष तक सीमित नहीं है, वह सबके हैं और सब उनके हैं।

यह पचास वर्ष की यात्रा किसी 'यशवन्त' की यात्रा नहीं है, यह यात्रा धर्म की यात्रा हैं...जिस प्रकार तीर्थयात्रा में पड़ाव आते हैं उसी प्रकार इस धर्म की यात्रा में पड़ाव आते है...पहला पड़ाव बचपन का है बालक यशवन्त विद्याध्ययन के लिये उत्सुक होता है लेकिन वह पुस्तकीय ज्ञानार्जन न करके आत्मीय ज्ञानार्जन करता है धर्म के प्रति अनुरक्त होता है। बाहरी चकाचौंध से अलग होकर अपने भीतर अदृश्य जगत् को देखने की दृष्टि पैदा कर दी और दृश्य जगत के पीछे छिपे अदृश्य दृश्य को देखना ही अब उनका ध्येय हो गया।

घर आँगन में बचपन की अठखेलियाँ करते हुए पड़ाव पर पड़ाव आते गए और उन्नीस (१९) वर्ष की युवावस्था में १९६९ में सीधे आचार्य श्री धर्मसागर जी से मुनि दीक्षा ले ली नाम रखा गया मुनि वर्द्धमान सागर। उस समय उन्होंने समस्त पूर्वाचार्यों की शरण को स्वीकार कर लिया...आचार्य श्री धर्मसागर जी ने जब से उन्हें मुनि पद पर प्रतिष्ठित किया, तब से उनकी यात्रा शुरू हुई। इस यात्रा में "वर्द्धमान सागर जी" सतत साधना पथ पर अग्रसर होते गये। उनकी चर्या निर्दोष, उनकी साधना निर्दोष जिसके कारण उनकी आंतरिक उपलब्धियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती गई। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी की निर्दोष परम्परा को उन्होंने पचास वर्ष तक आगम की छाँव तले निभाया तथा २९ वर्ष आचार्य पद पर रहकर जिन्होंने शिष्य परम्परा को वृद्धिंगत किया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारे विश्व में दिगम्बरत्व का डंका बजाया।

विश्व प्रसिद्ध भगवान् बाहुबली का द्वादशवर्षीय महामस्तकाभिषेक भी जिनके सान्निध्य में तीन बार हो चुका...जिनकी वात्सल्य की छाँव तले सैकड़ों मुनि आर्यिका एक ही मंच पर बैठकर उनकी आत्मीयता का रसपान करते हैं।

परमपूज्य प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उनकी पट्ट परम्परा में पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री वर्द्धमान सागरजी महाराज जी के पचासवें (५०) मुनिदीक्षा महोत्सव पर "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" से जैनधर्म की प्रभावना, श्रुत की प्रभावना का प्रचार-प्रसार सारे विश्व में हो, भगवान महावीर की वाणी अवाधगति से प्रचारित होती रहे इस भावना को लेकर आर्ष परम्परागत आचार्य प्रणीत ५० ग्रन्थों का प्रकाशन शताब्दी समारोह एवं आचार्य श्री वर्द्धमान सागरजी महाराज के पचासवें मुनि दीक्षा महोत्सव पर करते हुए हमें हर्ष हो रहा है।

पूर्व में यह सुभाषितावली ग्रन्थराज शान्तिवीर दि० जैन संस्थान शांतिवीर नगर श्रीमहावीर जी से प्रकाशित हो चुका हैं फिर भी इस ग्रन्थ की मांग होने से एवं प्रबुद्धजनों के पठनार्थ पुनः आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन, कोलकाता से प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनके जीवन की मंगल कामना करते हैं।

मैं जगद्गुरु कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी भट्टारक स्वामी जी को नमन करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरणा एवं मार्गदर्शन देकर इस कार्य के लिए प्रेरित किया। साथ ही विद्वत् शिरमौर डॉ. श्रेयांस कुमार जी बड़ौत के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरा धैर्य और साहस बढ़ाया। श्राविका श्रेष्ठ-धर्म परायण कलकत्ता निवासी श्री कुसुम जी छाबड़ा को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थों के प्रकाशन में बहुत बड़ा सहयोग दिया। धर्मपत्नी विनीती सिंघई जी का भी इस कार्य में बहुत बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ अतः उनके श्रुत ज्ञान वर्द्धन की कामना करता हूँ तथा ग्रन्थों के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनके मंगल जीवन की क़ामना करता हूँ।

प्रतिष्ठाचार्य

डॉ. आनन्दप्रकाश शास्त्री

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभाशंसा

स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी
श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

भगवान महावीर की दिव्यध्वनि को धारण कर गौतम गणधर स्वामी ने श्रुत का गुम्फन किया, उसी श्रुत का आश्रय लेकर श्रुत केवलियों के द्वारा द्वादशांग का प्रणयन हुआ। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वादशांग के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं। उनके बाद श्रुत का बोध हीन होता गया अनन्तर एक अंग के ज्ञाता रहे फिर अंग और पूर्व के आंशिक ज्ञान वाले श्रुतज्ञानी रहे इसी क्रम में गुणधर-धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य हुए। इन्होंने कसायपाहुड और षट्खण्डागम जैसे आगम ग्रन्थों की रचना की, फिर आचार्य कुन्दकुन्द देव, आचार्य यतिवृषभ, आचार्य शिवार्य, आचार्य नेमिचन्द्र, आचार्य जिनसेन आदि अनेक आचार्यों ने ग्रन्थों को रचकर श्रुत का सम्बर्द्धन किया। आचार्यों का विशिष्ट अवदान वर्तमान में संरक्षित रखना सभी मनीषियों का कर्त्तव्य है।

इसी समुद्देश्य से चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं की परम्परा के पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्यवारिधि आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज के स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव के सुअवसर पर आचार्यों द्वारा प्रणीत प्राचीन मूल ग्रन्थों को "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता से प्रकाशित किया जाना महान पुण्य का कार्य हैं। प्राकृत-संस्कृत में रचित ग्रन्थों में अध्यात्म और सिद्धान्त की प्ररूपणा है। आध्यात्म और सिद्धान्त जैन-धर्म दर्शन के प्राणतत्व है। इनका परिज्ञान के बिना आत्मबोध असंभव होता है।

आत्म प्रबोधन ने निमित्त भूत ग्रन्थराजों का प्रकाशन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, श्रुतज्ञान की प्रभावना केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण होती है। केवलज्ञान का कारण ही विनय पूर्वक श्रुताभ्यास है इसीलिए श्रुत के अभ्यास हेतु श्रमण और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक आगम ग्रन्थों का अध्ययन कर आत्मकल्याण करें। ग्रन्थों के प्रकाशन का जो कार्य कोलकाता के उदीयमान नक्षत्र युवा विद्वान् डॉ. आनन्दप्रकाश शास्त्री ने अपने हाथ में लिया है। उनकी यह सेवा ज्ञान वृद्धि में सहायक हो, पचास ग्रन्थों का प्रकाशन एक ऐतिहासिक सिद्ध होगा। श्रुत संवर्द्धन योजना ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम का कारण है। इस योजना के लिए सहर्ष अनुमोदना, शुभकामना करते हैं।

जययु सुद देवता

स्वस्ति चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी

श्रीक्षेत्रश्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

१५/०३/२०१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरोवाक्

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत
अध्यक्ष : अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्

सातिशय पुण्योदय से चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं की परम्परा के पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्यावारिधि श्री वर्द्धमान सागर जी महाराज के मुनिदीक्षा के पचास वर्ष होने पर सम्पूर्ण जैन समाज आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव प्रभावना के साथ मना रही है इसी पुण्यावसर पर "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता लोक कल्याण और स्वाध्याय हेतु ५० ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहा है। यह प्रशस्त कार्य है क्योंकि धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय ही कल्याण का पावन निमित्त होता है जैसा कि कहा गया है–

धर्मशास्त्रश्रुतौ शाश्वत् लालसं यस्य मानसम्।
परमार्थं स एवेह सम्यज्जानाति ना परः।।

जिसका मन धर्म-शास्त्र के सुनने में सदा लालसा युक्त रहता है वही इस जगत् में परमार्थ को अच्छी तरह जानता है, अन्य नहीं। मानव ने विज्ञान के माध्यम से जड़ तत्वों का अन्वेषण किया है उसने जड़ तत्व को देखा परखा और गहराई में पहुँचकर परमाणु जैसे सूक्ष्म तत्व में निहित विराट शक्ति को खोजा किन्तु इससे शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। शान्ति की अजस्रधारा तो आत्मदर्शन और आत्मज्ञान से ही संभव है वह आत्मज्ञान भगवान् जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित दिव्य ज्ञान से होता है। भगवान जिनेन्द्र की वाणी को गणधर स्वामी और आरातीय आचार्यों की परम्परा से श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने लिपिबद्ध किया। आचार्यों द्वारा प्रणीत शास्त्रों में आत्मा की मीमांसा है आत्मा का ज्ञान मूल शास्त्रों से ही हो सकता है इसीलिए इनका स्वाध्याय आवश्यक है। क्योंकि–

स्वाध्याज्ज्ञानवृद्धिः स्यात्तस्यां वैराग्यमुत्वणम्।
तस्मात्सर्गपरित्यागस्ततश्चित्तं निरोधनम्।।

अर्थात्–स्वाध्याय से ज्ञान वृद्धि होती है। ज्ञान वृद्धि होने पर उत्कृष्ट वैराग्य बढ़ता है। वैराग्य से संसार त्याग होता है और उससे चित्त का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियन्त्रण होता है।

चित्त का नियन्त्रण ही आत्मज्ञान में सहकारी बनता है। आत्मज्ञान के लिए शास्त्रों का स्वाध्याय अमोघ दीपक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सचेतक विद्वान डॉ. आनन्दप्रकाश जी शास्त्री, कोलक़ाता ने आचार्य शान्तिसागर दीक्षा शताब्दी समारोह एवं आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव के प्रसंग पर ५० मूल प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाशन कराने का जो "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता ने उपक्रम किया है वह महत्वपूर्ण है। इन ग्रन्थों के प्रकाशन से स्वाध्यायियों को तो विशेष लाभ होगा ही साथ में शोध के क्षेत्र में बहुत अधिक सहयोग मिलेगा।

वात्सल्यावारिधि आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज का सभी विद्वानों को विशेष आशीर्वाद है। विद्वान श्रुत सपर्या करते हुए अपने जीवन को कृतार्थ करें। यह ग्रन्थ प्रकाशन योजना श्रुतसंरक्षण का महत्त्वपूर्ण योग है इस योग हेतु "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता के समस्त पदाधिकारी सहित डॉ. आनन्दप्रकाश जी शास्त्री कोलकाता के श्रुतज्ञान वर्धन की कामना करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी का बाह्य व्यक्तित्व
उतना ही मनोरम है जितना अंतरंग...
तपस्या में वे वज्र से कठोर है...पर
उनके मुक्त हास्य और सौम्य मुखमुद्रा से
कुसुम की कोमलता झलकती है...
वे जीवन के शाश्वत सत्यों से स्वयं
रूबरू होकर हमें भी रूबरू करवा रहे हैं...।
सूरज की किरण बनकर हमारे भीतर
आशा और विश्वास का सवेरा जगाते हैं...
तो चंदा की चाँदनी बनकर हमारे अज्ञान के
अन्धकार को दूर करते हैं...
वे अपनी आत्मीयता में डुबोते हैं और...
बहुत सरलता से पार उतरने के लिये पतवार
थमा देते हैं...वे हमें सच्चाई
का सामना करने का पथ और साहस प्रदान करते हैं।
ऐसे वात्सल्य वारिधि का
"स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव"
हमें प्रेरणास्पद बने....इस भावना
के साथ उनके चरणों में शत शत नमन...।

—कुसुम छाबड़ा
कोलकाता

जिनके पुनीत स्मरण से मन उदार और श्रद्धा से भर जाता है,
कठिनाईयों से भरी राहों में जो उम्मीद की किरण दिखाते हैं,
जीवन के हर मोड़ पर जो नई राह बनाना सिखाते हैं।
तथा सदोष काल में जो निर्दोष परम्परा को निभा रहे हैं
ऐसे वन्दनीय गुरुवर, श्री वर्द्धमान सागरजी कें
५०वें मुनि दीक्षा पर शत शत नमन....।

-विनीता सिंघई
कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथाऽर्हत्स्तुतिः

जय जय जिनराज ध्वस्तदुर्मोहराज।
प्रहतमदनराज प्रह्वतदेवराज।।
रुचिरतरविराज स्तुत्यशक्ताहिराज।
प्रचुरसुगुणराजन् नच्युताधीशराज।।१।।
जय जय जिनघोर प्राप्तजन्माब्धिपार।
प्रथितविभवसार प्रौढ़तीर्थावतार।।
प्रहतहतकुमार प्रोद्गतानन्दपूर।
प्रहसितशतशूर प्रप्रकृष्टांशुभार।।२।।
जय जय जिनमित्र ध्वान्तविध्वंसमित्र।
स्वतिशयगुणगात्र ज्ञानविस्फूर्तिपात्र।।
परमपदपवित्र प्रोल्लसद्देवयात्र।
प्रवरशरणचात्र प्राणिनामप्यमुत्र।।३।।
जयजय जिनजैत्र क्ष्मात्रयारामचैत्र।
त्रिदशविधृतवेत्र श्वेतचित्रातपत्र।।
निरतिशयचरित्र श्रीमदोक्तसूत्र।
स्वदुरघतरुदात्र श्रायसश्रीकलत्र।।४।।
जय जय जिनतात त्रातरत्यन्तपूत।
स्थिरतरसुखदातः कर्मसघातघात।।
कुमतजलदवात ज्ञेयजातप्रमात।
प्रवचनरथसूत ख्यातदेवाभिनूत।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जय जय जिनचन्द्र छिन्नदुर्मोहतन्द्र।
प्रणतसुरनरेन्द्र स्वात्मलक्ष्मिन्मुनीन्द्र।।
स्वतिशयगुणरून्द्र प्रीणितप्राणिमन्द्र।
प्रवचनसरिदिन्द्र स्फीटभासान्द्रचन्द्र।।६।।

जय जय जिनसेव्य त्रासमुप्रीतभव्य।
त्रिभुवनमहितब्य स्वात्मसंभावितव्य।।
स्मृतपथनिहितव्य श्रेयसे भावितव्य।
वरदनमसितव्य प्रत्यहं कीर्त्तितव्य।।७।।

जय जय जिननाथ ज्ञातसम्पत्सनाथ।
प्रतिहतरतिनाथ प्रास्तमोहाघनाथ।।
नतसुरनरनाथ श्रीदलोकाधिनाथ।
श्रुतिकजदिननाथ श्रीवध्प्राणनाथ।।८।।

नमदनिमिषखण्ड खण्डितानङ्गकाण्ड।
हसितलसिततुण्ड ध्यानधीराग्निकुण्ड।।
सुगुणमणिकरण्ड जन्मवाधौंतरण्ड।
जिनमतचिदखण्ड श्रायसानन्दपिण्ड।।९।।

इत्यर्हत्स्तुति

जिनरूपं जिनलक्षणं जिनपदद्वन्दं जिनास्याम्बुजं।
जिननाम जिनमन्दिरं जिनकथालापं जिनोक्तागमं।।
जिनबोध जिनदर्शनं जिनमहावीर्य जिनश्रीसुखं।
जिनधर्म जिनशासनं जिनगुणस्तोत्र जगन्मङ्गलं।।

❋ ❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्य वक्तव्य

श्री १०८ पूज्यवर आचार्य कल्प श्रुतसागरजी महाराज के संघस्थ श्री १०८ पूज्य मुनि अजितसागरजी महाराज उस संघ में उपाध्याय के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपाध्याय परमेष्ठी के समान निरन्तर आप पठन पाठन में व्यस्त रहते हैं। आपने संस्कृत भाषा का अच्छा अनुभव किया है। सघस्थ साधुओं एवं माताजी वगैरह को संस्कृत व्याकरण साहित्य तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन करा कर आपने निपु बना दिया है। पठन पाठन और स्वाध्याय के अतिरिक्त आपके पास जो समय शेष रहता है। उसमें आप प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन संशोधन आदि करते हैं। आपके इस अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के फल स्वरूप कितने ही ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं।

यह सुभाषितावली भी आपके संपादन का सुफल है। अनेक हस्तलिखित प्रतियों पर से इसकी एक कापी तैयार कर आपने अनुवाद के लिये मेरे पास भेजी। साध ही यह संदेश भी भेजा कि इसका अनुवाद अत्यन्त शीघ्र करके भेजे जिससे उदयपुर का चातुर्मास पूर्ण होते होते इसका मुद्रण हो जावे। मेरी दिनचर्या कुछ ऐसी व्यस्त रहती है कि उसमें चालू कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य के लिये समय निकालना कठिन दिखता है। फलतः विद्यालय से कुछ अवकाश लेकर यह कार्य पूरा करना पड़ा।

३८८ श्लोकों के इस अल्पकाय ग्रन्थ में ७९ प्रकरणों के द्वारा श्रावक धर्म के प्रायः सभी अङ्गों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ की भाषा प्रसाद गुण से सहित है, तथा छन्द भी प्रचलित हैं अतः सरलता से ग्रन्थ का भाव बुद्धि में आ जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस ग्रन्थ के रचयिता भी श्री भट्टारक सकल कीर्ति है। यह पन्द्रहवीं शती के एक बहुश्रुत एवं प्रतिभाशाली विद्वान थे। इनका जन्म अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले श्री करमसिंहजी की धर्मपत्नी शोभा की कुक्षि से विक्रमसवत १४४३ में हुआ था। इनकी जाति हूमड़ थी। आपका जन्म नाम पूर्णसिंह रक्खा गया। ५ वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन शुरू हुआ कुशाग्रबुद्धि होने से आपने थोड़े ही समय में अनेक विषयों का अध्ययन कर लिया।

आपका परिणाम संसार से विरक्त रहता था अतः कहीं यह जल्दी ही गृहस्थी से सम्पर्क न छोड़ दे, इस भय से इनके पिता ने १४ वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह कर दिया पर विवाह का बन्धन भी उन्हें चिरकाल तक गृहस्थी के चक्र में नहीं रख सका। उन्होंने २६ वर्ष की भरी जवानी में गृहस्थी को तिलाञ्जली देकर साधु दीक्षा धारण कर ली। भट्टारक सकल कीर्ति नु रुस के अनुसार गृहत्याग के समय इनकी अवस्था १८ वर्ष की थी। यद्यपि ये भट्टारक थे तथापि नग्न रहते थे। साधु होने के बाद ये भ. पद्मनन्दी के पास जो कि नैणवां (राजस्थान) में रहते थे, चले गये और उनके पास रह कर संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का आठ वर्ष तक अध्ययन किया। ३४ वर्ष की अवस्था में आचार्य पद से विभूषित हुए और तब सकल कीर्त्याचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपने राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि राज्यों तथा गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपवर्ती प्रदेशों में विहार कर जनता में साहित्यिक तथा धार्मिक चेतना जागृत की। अनेक प्रतिष्ठाओं का आयोजन भी आपने कराया। आपको ग्रन्थ रचना की बहुत भारी अभिरुचि थी। संस्कृत प्राकृत तथा राजस्थानी भाषा के अनेक ग्रन्थों की रचना आपने की है। विविधभण्डारों की खोजबीन से अब तक आपको संस्कृति भाषा में रचे हुए २८ तथा राजस्थानी भाषा में रचे हुए ७ ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। संस्कृत भाषा के ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. मूलाचारप्रदीप २. प्रश्नोत्तरोपासकाचार ३. आदिपुराण ४. उत्तरपुराण ५. शान्तिनाथचरित्र ६. वर्द्धमान चरित्र ७. मल्लिनाथचरित्र ८. यशोधरचरित्र ९. धन्यकुमार चरित्र १०. सुकुमालचरित्र ११. सुदर्शनचरित्र १२. सद्भाषितावली (सुभाषितावली) १३. पार्श्वनाथचरित्र १४. सिद्धान्तसार दीपक १५. व्रतकथाकोश १६. नेमीजिनचरित्र १७. कर्मविपाक १८. तत्वार्थसारदीपक १९. आगमसार २०. परमामराजस्तोत्र, २१. पुराणसंग्रह, २२. सारचतुर्विंशतिका २३. श्रीपालचरित्र २४. जम्बूस्वामीचरित्र २५. द्वादशानुप्रेक्षा २६ आष्टाह्निकपूजा २७. षोडस कारण पूजा २८ गणधरवलय पूजा।

राजस्थानी भाषा के ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं–१. आराधना प्रतिबोधसार २. नेमीश्वरगीत ३. मक्तावलिगीत ४. णमोकार फलगीत ५ सोलहकारणरास ६. शिखामणरास ७. शान्तिनाथ फल।

उपर्युक्त ग्रन्थों में से कुछ ही ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं अच्छा हो कोई संस्था 'सकल कीर्ति ग्रन्थावली' के नाम से इनको समस्त संस्कृत ग्रन्थों का एक संग्रह प्रकाशित कर दें।

एक पट्टावली के अनुसार भ. सकल कीर्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। संवत् १४९९ में महसाना नगर में उनका स्वर्गवास हुआ। इनकी शिष्य परम्परा में अच्छे-अच्छे प्रबुद्ध शिष्य हुए हैं।

आगे जो विषय सूची दी जा रही है उससे सुभाषितावली के प्रकरणों की सूचना पाठकों को अनायास प्राप्त हो जायेगी। सुभाषितों का स्थान साहित्य में उन प्रकाश स्तम्भों के समान माना गया है जो दिग्भ्रान्तपथिकों को अभीष्ट मार्ग का परिज्ञान कराते हैं। वस्तुतः सुभाषित अपना महत्व अलग से रखते हैं कितने ही ग्रन्थ सुभाषितों के रूप में स्वतन्त्र रचे गये जैसे सुभाषित रत्न संदोह सूक्ति मुक्तावली और कितने ही सुभाषित अप्रस्तुत प्रशंसा या अर्थान्तर न्यास के रूप में महाकाव्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में मिलते हैं। जैसे वादीभसिंह के क्षत्रचूड़ामणि ग्रन्थ में सुभाषितों का भण्डार भरा हुआ है। संस्कृत साहित्य में अनेकों ग्रन्थ सुभाषित संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। उसी दिशा में आचार्य सकल कीर्ति की यह सुभाषितावली भी आती है। आशा है स्वाध्याय के प्रेमी जन इसका स्वाध्याय कर अपने रत्नत्रय को परिपुष्ट करेंगे।

श्लोकों का अनुवाद मूलानुगामी है अतः इस पर से श्लोक का अर्थ समझने में सरलता होगी ग्रन्थकर्त्ता का परिचय श्री डा. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल के 'राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व और कृतित्व' से लिया गया है अतः उनके प्रति आभार हैं। पूज्य मुनिवर अजितसागरजी महाराज ने एक उत्तम ग्रन्थ जनता के लिये संपादित कर इसलिये इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अनुवाद करने में यदि कहीं त्रुटि हुई हो तो विद्वज्जन मुझे क्षमा करेंगे।

सागर — विनीत

१८-१-१९७२ — **पन्नालाल साहित्याचार्य**

❄ ❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

क्र.	विषय का नाम	पृष्ठ
१.	पीठिका	१
२.	धर्म कुरु	११
३.	पापं त्यज	१३
४.	सम्यक्त्वं भज	१४
५.	मिथ्यात्वं त्यज	१५
६.	ज्ञानं पठ	१६
७.	चारित्र पालय	१८
८.	इन्द्रियजयं कुरु	१९
९.	नारीसङ्गं त्यज	२१
१०.	नारीरूपं मध्ये विचारय	२२
११.	काम त्यज	२३
१२.	वीतराग भज	२५
१३.	निर्ग्रन्थगुरु सेवां कुरु	२६
१४.	तपः कुरु	२८
१५.	जिह्वावशं कुरु	२९
१६.	द्वेषं जहि	३१
१७.	रागं त्यज	३२
१८.	क्रोधं जहि	३३
१९.	मानं त्यज	३४
२०.	मायां त्यज	३६
२१.	लोभं त्यज	३७
२२.	दयां कुरु	३९
२३.	सत्यं वद	४०
२४.	अदत्तं त्यज	४२
२५.	शीलं भज	४४
२६.	परिग्रहं त्यज	४५
२७.	वैराग्यं कुरु	४७
२८.	गुणिसङ्गं कुरु	४८
२९.	जिनपूजां कुरु	५०
३०.	पात्रदानं कुरु	५१
३१.	कुपात्रदानं त्यज	५२
३२.	जिनबिम्ब निर्माणं कुरु	५४
३३.	जिनबिम्ब प्रतिष्ठां कुरु	५५
३४.	चैत्यालयं निर्मापय	५५
३५.	उपकरणदानं कुरु	५६
३६.	ज्ञानदानं विधेहि	५७
३७.	औषधदानं कुरु	५७
३८.	अभयदानं देहि	५७
३९.	घनसदुपयोग कुरु	५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०. भावं कुरु ५८
४१. रात्रिभोजनं त्यज ६०
४२. गेहं त्यज ६२
४३. देहेवैराग्यं कुरु ६३
४४. संसारवैराग्यं कुरु ६४
४५. भोगवैराग्यं कुरु ६६
४६. धीरत्वं कुरु ६७
४७. शोकं त्यज ६८
४८. नीरस्नानं त्यज ६९
४९. शरीरसफलं कुरु ७१
५०. यौवनंसफलं कुरु ७४
५१. कलङ्कितवृत्तं त्यज ७५
५२. धर्मस्थाने निषिद्धं कार्य त्यज ७५
५३. निर्माल्यं त्यज ७६
५४. व्रतभङ्गं त्यज ७७
५५. समाधिमरणं कुरु ७९
५६. आशां त्यज ८०
५७. कुटुम्बसङ्गं त्यज ८१
५८. कर्मशत्रुं जहि ८३
५९. चतस्रो भावनाः कुरु ८४
६०. महामन्त्रं जप ८६
६१. घर्मौषधं कुरु ८७
६२. धर्मशरणं कुरु ८८
६३. एकत्वं भज ९०
६४. अनित्यभावनां कुरु ९२
६५. विवेकं भज ९३
६६. धर्मसम्बलं कुरु ९६
६७. मनुजत्वं दुर्लभंविदुः ९७
६८. द्यूतव्यसनं त्यज १०१
६९. मांसव्यसनं त्यज १०१
७०. मद्यव्यसनं त्यज १०२
७१. वेश्याव्यसनं त्यज १०३
७२. आखेटव्यसनं त्यज १०४
७३. चौर्यव्यसनं त्यज १०४
७४. परस्त्रीव्यसनं त्यज १०५
७५. सप्तव्यसनं त्याग संदर्भोपसहारः १०५
७६. योग्यमाचरत्वम् १०६
७७. इन्द्रियसुखनिरुत्सुको भव १०८
७८. अन्तिममङ्गलम् ११०
७९. समुपसहारः १११

❁ ❁

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

भट्टारक श्री सकल कीर्ति विरचिता

सुभाषितावली

पीठिका

जिनाधीशं नमस्कृत्य संसाराम्बुधितारकम्।
स्वान्यहितमुद्दिश्य वक्ष्ये सुभाषितावलीम्।।१।।

अर्थ—संसार सागर से तारने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर मैं निज और पर के हित के उद्देश्य से सुभाषितावली को कहूंगा।।१।।

धर्मं त्वं कुरु दुस्त्यजं त्यज महापापं बुधैर्निन्दितं।
सम्यक्त्वं भज शर्मदं त्यज महामिथ्यात्वमूलं च वै।
सच्छास्त्रं पठ वृतमाचर जय पञ्चेन्द्रियाणां च भो।
नारीसङ्गमपि स्वयं त्यज सदा कामं कलङ्कास्पदम्।।२।।

अर्थ—हे भाई तू धर्म कर, दुःख से छोड़ने योग्य तथा विद्वानों के द्वारा निन्दित महापाप को छोड़, सुख दायक सम्यग्दर्शन की आराधना कर; तीव्र मिथ्यात्व के मूल को निश्चय से त्याग कर, समीचीन शास्त्र को पढ़, चारित्र का आचरण कर, पञ्चेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, स्त्री समागम का भी स्वयं त्याग कर तथा कलङ्क के स्थानभूत सदा काम सेवन त्याग कर।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्ट्वा स्त्रीसुशरीररूपमतुलं मध्ये विचारं कुरु।
श्रीतीर्थेश्वरपादसत्कमलयो सेवां सदा सद्गुरोः।
बाह्याभ्यन्तरसत्तपः कुरु सदा जिह्वां वशं चानय।
भ्रातस्त्वं त्यज द्वेषरागसहितान् सर्वान्कषायांश्च वै।।३।।

अर्थ–स्त्री शरीर के अनुपम रूप को देख कर तूं अन्तरङ्ग में विचार कर, श्री तीर्थं कर भगवान् के चरण कमलों और सद्गुरु की सेवा कर, बाह्य और आभ्यन्तर तप कर, सदा जिह्वा इन्द्रिय को वश में रख, तथा निश्चय से राग द्वेष सहित समस्त कषायों का त्याग कर।।३।।

सर्वेषु जीवेषु दयां कुरु त्वं सत्यं वचो ब्रूहि धनं परेषाम्।
अब्रह्मसेवां त्यज सर्वकालं परिग्रहं मुञ्च कुयोनिबीजम्।।४।।

अर्थ–तू सब जीवों पर दया कर, सत्य वचन बोल, दूसरों का धन तथा कुशील सेवन का सदा के लिये त्याग कर, एवं कुयोनियों-नरकादि गतियों के कारण भूत परिग्रह को छोड़।।४।।

वैराग्यसारं भज सर्वकालं निर्ग्रन्थसङ्ग कुरु मुक्तिबीजम्।
विमुञ्च सङ्गं कुजनेषु मित्र! देवार्चनं त्वं कुरु वीतरागे।।५।।

अर्थ–हे मित्र तूं सदा श्रेष्ठ वैराग्य की आराधना कर, मुक्ति के कारण भूत निर्ग्रन्थमुनियों की संगति कर, परिग्रह छोड़ और वीतराग जिनेन्द्र की पूजा कर।।५।।

दानं त्वं कुरु पात्रसार मुनये चैत्यालयं भावनां।
रात्रौ भोजनवर्जनं त्यज महागार्हस्थ्यभावं सुहृत्।
देहं त्वं त्यज भोगसारमपि वै संसारपारं व्रज
धीरत्वं कुरु मुञ्च शोकमशुभं शौचं च नीरं विना।।६।।

अर्थ–हे मित्र! तू पात्रों में श्रेष्ठ मुनि के लिये दान कर, चैत्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनवाने की भावना कर, रात्रि के समय भोजन का परित्याग कर, बहुत भारी गृहस्थी का भाव छोड़, शरीर का ममत्व छोड़ श्रेष्ठ भोग को भी छोड़, निश्चय से संसार के पार को प्राप्त हो, धीरता धारण कर, अशुभ शोक और जल के विना शौच को धारण कर॥६॥

सारं त्वं कुरु देहमेव सकलं धृत्वा व्रतं मा त्यज
संन्यासे मरणं च भोगविषये चाशा मिहामुत्र च।
माध्यस्थ्यं हितमेव जाप्यजपनं रोगस्य निर्णाशनं
जीवस्याशरणं बलं च विभवं सारं विवेक भज।।७।।

अर्थ—तूं इस शरीर को ही सारभूत श्रेष्ठ कर, सकल व्रत धारण कर उसका परित्याग मत कर, सन्यास मरण कर, इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोग विषय के आशा को छोड़ हितकारी माध्यस्थ्य भाव को अङ्गीकृत कर तथा रोग को नष्ट करने वाला जिनेन्द्र भगवान् का जाप्य कर॥७॥

सम्बलं कुरु वै धर्मं मानुष्य दुर्लभं भवेत्।
अयोग्यं च परित्यज्य योग्य मूक्तिं त्वमाचर।।८।।

अर्थ—हे भाई! तूं निश्चय से धर्म को ही सम्बल बना कर, अन्यथा मनुष्य जन्म दुर्लभ हो जावेगा, अयोग्य का परित्याग कर योग्य तथा मुक्ति का आचरण कर।

भावार्थ—यहाँ श्लोक द्वारा 'धर्म कुरु' 'पापं त्यज' तथा 'सम्यत्त्वं 'भज' आदि ग्रन्थ के आगे कहे जाने वाले अवान्तर विभागा का भी उल्लेख किया गया है॥८॥

धर्मं कुरु

धर्मं करोति यो नित्यं संपूज्यं त्रिदशेश्वरैः।
लक्ष्मीस्तं स्वयमायाति भुवनत्रयसंस्थिता।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो इन्द्रों के द्वारा सम्यक् प्रकार से पूजनीय धर्म को निरन्तर करता है उसे तीनों लोकों में रहने वाली लक्ष्मी स्वयं प्राप्त हो जाती है।।९।।

धर्मवन्तो हि जीवस्य भृत्यः कल्पद्रुमो भवेत्।
चिन्तामणिः कर्मकरः काम धेनुश्च किङ्करी।।१०।।

अर्थ–निश्चय से धर्मवन्त जीव का कल्प वृक्ष सेवक हो जाता है, चिन्तामणिरत्न किंकर बन जाता है और कामधेनु किंकरी हो जाती है।।१०।।

धर्मेण पुत्रपौत्रादि सर्व संपद्यते नृणाम्।
गृहवाहनवस्तूनि राज्यालङ्करणानि च।।११।।

अर्थ–धर्म के द्वारा मनुष्य को पुत्र पौत्र आदि सभी सामग्री, गृह वाहन आदि वस्तुएँ तथा राज्य और आभूषण आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं।।११।।

वरं मुहूर्तमेकं च धर्मयुक्तस्य जीवितम्।
तद्धीनस्य वृथा वर्ष कोटी कोटि विशेषताः।।१२।।

अर्थ–धर्मयुक्त मनुष्य का एक मुहूर्त का जीवन अच्छा है और धर्मरहित मनुष्य का कोड़ा कोड़ी वर्षों तक का जीवन अच्छा नहीं है।।१२।।

यमदमशमजातं सर्वकल्याणबीजं
सुगतिगमनहेतुं तीर्थनाथैः प्रणीतम्।
भवजलनिधिपोतं सारपाथेयमुच्चै–
स्त्यज सकलविकारं धर्ममाराधय त्वम्।।१३।।

अर्थ–हे भाई! तूं सकल विकारों को छोड़ और यमव्रत नियमादि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दम-इन्द्रियविजय तथा शम-क्षमा आदि से उत्पन्न होने वाले, समस्त कल्याणों का मूल कारण, सुगति की प्राप्ति का हेतु, तीर्थंकरों के द्वारा कथित, संसारसागर से पार करने के लिये जहाज स्वरूप एवं श्रेष्ठ-उत्कृष्ट पाथेय-संबल स्वरूप धर्म की आराधना कर॥१३॥

पापं त्यज

पापं शत्रुं परं विद्धि श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रदम्।
रोगक्लेशादिभण्डारं सर्वदुःखाकरं नृणाम्।।१४।।

अर्थ—हे भाई! मनुष्यों के लिये नरक और तिर्यञ्च गति को देने वाले, रोग तथा क्लेश आदि का भण्डार एवं समस्त दुःखों की खान स्वरूप पाप को सबसे बड़ा शत्रु जान॥१४॥

जीवन्तोऽपि मृता ज्ञेया धर्महीना हि मानवाः।
मृता धर्मेण संयुक्ता इहामुत्र च जीविताः।।१५।।

अर्थ—निश्चय से धर्म रहित मनुष्य जीवित रहते हुए भी मृत जानने योग्य हैं और जो धर्म से सहित हैं वे इस लोक तथा परलोक में जीवित हैं ऐसा जानना चाहिये॥१५॥

पापवतो हि नास्त्यस्य धनधान्यगृहादिकम्।
वस्त्रालंकारसद्वस्तुदुःखक्लेशानि सन्ति च।।१६।।

अर्थ—पापयुक्त मनुष्य को धन, धान्य, घर आदिक तथा वस्त्र आभूषण आदि उत्तमोत्तम पदार्थ प्राप्त नहीं होते इसके विपरीत दुःख और क्लेश प्राप्त होते हैं॥१६॥

मित्रशत्रू च विज्ञेयौ पुण्यपापे शरीरिणाम्।
जीवेन व्रजतः सार्द्धं सुखदुःखफलप्रदौ।।१७।।

अर्थ—पुण्य और पाप ही जीवों के मित्र तथा शत्रु जानना चाहिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुख दुःख रूप फ़ल को देने वाले पुण्य और पाप ही जीव के साथ जाते हैं॥१७॥

सकलभवनिदानं रोगशोकादिबीजं
नरकगमनहेतुं सर्वदारिद्र्यमूलम्।
इहपरभवशत्रु दुःखदानैकदक्षं
त्यज मुनिवरनिन्द्यं पापबीजं समस्तम्।।१८।।

अर्थ—जो समस्त संसार का कारण है, रोग शोक आदि का बीज है, नरक की प्राप्ति का हेतु है, सब प्रकार की दरिद्रता का मूल कारण है, इस लोक और परलोक का शत्रु है, दुःख देने में अतिशय निपुण है तथा श्रेष्ठमुनि जिसकी निन्दा करते हैं ऐसे समस्त पाप रूपी बीज को तूं छोड़॥१८॥

सम्यक्त्वं भज

सम्यग्दर्शनसंशुद्धः सत्पुमानुच्यते बुधैः।
सम्यक्त्वेन विना जीवः पशुरेव न संशयः।।१९।।

अर्थ—सम्यग्दर्शन से शुद्ध मनुष्य ही विद्वानों के द्वारा सत्पुरुष कहा जाता है। सम्यक्त्व के बिना जीव पशु ही है इसमें संशय नहीं है॥१९॥

सम्यक्त्वं यस्य जीवस्य हस्ते चिन्तामणिर्भवेत्।
कल्पवृक्षो गृहे तस्य कामगव्यानुगामिनी।।२०।।

अर्थ—जिस जीव को सम्यग्दर्शन होता है मानों उसके हाथ में चिन्तामणिरत्न है, उसके घर में कल्पवृक्ष है और कामधेनु उसकी अनुगामिनी है॥२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वालंकृतिर्यस्य मुक्तिश्रीस्तं वरिष्यति।
स्वर्गश्रीः स्वयमायाति राज्यलक्ष्मीः सखी भवेत्।।२१।।

अर्थ—जिसके पास सम्यग्दर्शन रूप आभूषण होगा, मुक्ति रूपी लक्ष्मी उसी को वरेगी। स्वर्ग रूपी लक्ष्मी उसके पास स्वयं आ जाती है तथा राज्य लक्ष्मी उसकी सखी हो जाती है।।२१।।

सकलसुखनिधानं धर्मवृक्षस्य बीजं
जननजलधिपोतं भव्यसत्वैकपात्रम्।
दुरिततरुकुठारं ज्ञानचारित्रमूलं
त्यज सकलकुधर्मं दर्शनं त्वं भजस्व।।२२।।

अर्थ—हे भाई! तूं समस्त मिथ्याधर्म को छोड़ और उस सम्यग्दर्शन की आराधना कर जो समस्त सुखों का भण्डार है, धर्म रूपी वृक्ष का बीज है, संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये जहाज है, भव्य जीवों का एक पात्र है पाप रूपी वृक्षों को काटने के लिये कुल्हाड़ा है तथा ज्ञान और चारित्र का मूल कारण है।।२२।।

मिथ्यात्वं त्यज

मिथ्यात्वेन भृतो जीवः सद्धर्मं नाभिमन्यते।
ज्वरीव शर्करादुग्धं कुधर्मं मन्यते पुनः।।२३।।

अर्थ—जिस प्रकार ज्वर से युक्त मनुष्य, शक्कर से सहित दूध को अच्छा नहीं मानता उसी प्रकार मिथ्यात्व से भरा हुआ जीव समीचीन धर्म को अच्छा नहीं मानता, किन्तु कुधर्म को अच्छा मानता है।।२३।।

मिथ्यात्वसदृशं पापं सम्यक्त्वेन समं वृषम्।
न भूतं भुवने क्वापि नास्ति नाग्रे भविष्यति।।२४।।

अर्थ—मिथ्यात्व के समान पाप और सम्यक्त्व के समान धर्म इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार में कहीं भी न हुआ है, न है और न आगे होगा।।२४।।

नीचदेवरतो जीवो मूढः कुगुरुसेवकः।

कुज्ञानतपस्यायुक्तः कुधर्मात्कुगतिं व्रजेत्।।२५।।

अर्थ—नीच देवों में प्रीति करने वाला, कुगुरुओं की सेवा करने वाला तथा मिथ्याज्ञान और मिथ्यातप से युक्त मूढ़ प्राणी कुधर्म के कारण कुगति को प्राप्त होता है।।२५।।

वरं सर्पमूखे वासो वरं च विषभक्षणम्।

वरमग्निजले पातो मिथ्यात्वेन न जीवितम्।।२६।।

अर्थ—सर्प के मुख में वास करना अच्छा है, विषभक्षण करना अच्छा है और अग्नि तथा जल में पतन करना अच्छा है परन्तु मिथ्यात्व के साथ जीवित रहना अच्छा नहीं है।।२६।।

सकलदुरितमूलं दुःखवृक्षस्य बीजं

नरकगृहप्रवेशं स्वर्गमोक्षैकशत्रुम्।

त्रिभुवनपतिनिन्द्यं मूढलोकैर्गृहीतं

त्यज सकलमसारं त्वं च मिथ्यात्वबीजम्।।२७।।

अर्थ—हे भाई! जो समस्त पापों का मूल है, दुःख रूपी वृक्ष का बीज है, नरक रूपी घर का द्वार है, स्वर्ग और मोक्ष का अद्वितीय शत्रु है, त्रिलोकीनाथ-जिनेन्द्र देव ने जिसे निन्द्य कहा है, अज्ञानी जीव ही जिसे ग्रहण करते हैं और जो सार रहित है ऐसे समस्त मिथ्यात्व रूप बीज का तूं त्याग कर।।२७।।

ज्ञानं पठ (सच्छास्त्रं पठ)

ज्ञानयुक्तो भवेज्जीवः स्वर्गश्रीमुक्तिवल्लभः।

ज्ञानहीनो भ्रमेन्नित्यं संसारे दुःखसागरे।।२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सम्यग्ज्ञान से युक्त जीव, स्वर्ग लक्ष्मी तथा मुक्ति का स्वामी होता है और सम्यग्ज्ञान से रहित जीव दुःखों के सागर स्वरूप संसार में निरन्तर भ्रमण करता रहता है॥२८॥

यत्राचरित सज्ज्ञानी, अज्ञानी तत्र वै चरेत्।
बध्यते कर्मभि र्ह्यज्ञो ज्ञानी कर्मच्युतो भवेत्॥२९॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञानी जीव जहां विचरण करता है वहीं अज्ञानी जीव भी विचरण करता है परन्तु अज्ञानी जीव कर्मों से बद्ध होता है और ज्ञानीजीव कर्म से छूटता है॥२९॥

ज्ञानाभ्यासपरो जीवस्त्रिगुप्तेन्द्रियसंवरः।
भवेदेकाग्रचित्तश्च तस्माज्ज्ञानं परं तपः॥३०॥

अर्थ—चूंकि ज्ञानाभ्यास में तत्पर रहने वाला जीव, तीन गुप्तियों का धारक, इन्द्रियविजयी और एकाग्रचित्त होता है इसलिये ज्ञान उत्कृष्ट तप है॥३०॥

ज्ञानहीनो न जानाति धर्म्मं पापं गुणागुणम्।
हेयाहेयं विवेकं च जात्यन्ध इव हस्तिनम्॥३१॥

अर्थ—जिस प्रकार जन्मान्धमनुष्य हाथी को नहीं जानता है उसी प्रकार ज्ञानहीन मनुष्य धर्म अधर्म को, गुण अगुण को, छोड़ने योग्य को ग्रहण करने योग्य को और विवेक को नहीं जानता है॥३१॥

विलमगुणनिधानं विश्वविज्ञानबीजं
जिनमुनिगणसेव्यं सर्वतत्त्वप्रदीपम्।
दुरिततरुसमीरं पुण्यतीर्थं जिनोक्तं
मनङ्गभमदसिंहं ज्ञानमाराधय त्वम्॥३२॥

अर्थ—हे भाई तूं उस सम्यग्ज्ञान की उपासना कर जो कि निर्मल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणों का भण्डार है, समस्त विज्ञान का बीज है, जिनेन्द्र देव तथा मुनियों के समूह से सेवनीय है, समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिये दीपक स्वरूप है, पाप रूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिये आँधी है, पुण्य का तीर्थ है, जिनेन्द्र का कहा है और मन रूपी हाथी के मद को नष्ट करने के लिये सिंह है।।३२।।

चारित्रं पालय

जीवितव्यं वरं चैकं दिनं वृत्तसमन्वितम्।
न तु चारितहीनं हि वर्षकोटिशतं वृथा।।३३।।

अर्थ—चारित्रसहित एक दिन का जीना भी अच्छा है परन्तु चारित्र रहित करोड़ों वर्ष तक जीना वृथा है।।३३।।

हीने संहनने जीवो यश्चारित्रं समाचरेत्।
उत्कृष्टापेक्षया तस्य सहस्रगुणितं फलम्।।३४।।

अर्थ—जो मनुष्य हीन संहनन के रहते हुए चारित्र का आचरण करता है उसे उत्कृष्ट संहनन वाले की अपेक्षा हजार गुणा फल मिलता है।।३४।।

चरित्रासनमासीनो यद्यदङ्गी समीहते।
तत्तदेव समायाति त्रैलोक्ये त्रिजगत्पतिः।।३५।।

अर्थ—चारित्र के आसन पर बैठा हुआ प्राणी जिस वस्तु की इच्छा करता है तीनों लोकों में वह उसे प्राप्त होती है। यहाँ तक कि वह तीन जगत् का स्वामी होता है।।३५।।

हीने संहनने दीक्षां वर्षमेकं दधाति यः।
उत्कृष्टस्य सहस्रस्य दीक्षया हि समो भवेत्।।३६।।

अर्थ—हीन संहनन के रहते हुए भी जो एक वर्ष तक दीक्षा धारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है वह उत्कृष्ट संहनन वाले की हजार वर्ष की दीक्षा के बराबर होता है॥३६॥

हीने संहनने धीराः ये कुर्वन्ति तपोऽनघम्।

दिगम्बरत्वमासाद्य ते धन्या मुनिभिर्मताः॥३७॥

अर्थ—हीन संहनन के होने पर भी जो धीरवीर मनुष्य निर्दोष तप करते हैं वे मुनियों के द्वारा धन्य माने गये हैं॥३७॥

चारित्रचलितो जीवो जीवन्नपि मृतोपमः।

मृतश्चारित्रसंयुक्त इहामुत्र च जीवति॥३८॥

अर्थ—चारित्र से विचलित हुआ जीव जीवित रहता हुआ भी मृत के समान है और चारित्र से संयुक्त जीव मृत होकर भी इस लोक तथा परलोक में जीवित है॥३८॥

विदममरमान्यं तीर्थनाथैर्निषेव्यं

विविधगुणगरिष्ठैः सेवितं मुक्तिबीजम्।

विमलगुणनिधानं सर्वकल्याणमूलं

गतसकलविकारं वृत्तमाराधय त्वम्॥३९॥

अर्थ—हे भाई! जो मद-अहंकार से रहित है, तीर्थंकरों के द्वारा भी सेवन करने योग्य है, अनेक गुणों से श्रेष्ठ मनुष्य जिसकी सेवा करते हैं, जो मुक्ति का बीज है, निर्मल गुणों का भण्डार है, समस्त कल्याणों का मूल है और समस्त विकारों से रहित है उस चारित्र की तू आराधना कर॥३९॥

इन्द्रियजयं कुरु

इन्द्रियैस्तस्करैर्लोको वराको व्याकुलीकृतः।

---

१. भज इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मरत्नं समाहृत्य[१]मनोरा जेन प्रेरितैः।।४०।।

अर्थ—मनरूपी राजा से प्रेरित हुए इन्द्रियरूपी चौरों ने धर्म रूपी रत्न को चुरा कर वेचारे जगत् को व्याकुल कर दिया है।।४०।।

येन वैराग्यखड्गेन हताश्चेन्द्रियतस्कराः।
तस्य मोक्षोभवेत्स्वर्गः किं वृथा कायदण्डनैः।।४१।।

अर्थ—जिसने वैराग्य रूपी तलवार के द्वारा इन्द्रियरूपी चोरों को नष्ट कर दिया है उसे मोक्ष अथवा स्वर्ग अवश्य प्राप्त होता है वैराग्य के बिना व्यर्थ ही शरीर को दण्डित करने से क्या प्रयोजन है।।४१।।

इन्द्रियाणि न गुप्तानि जयं कृत्वा हृदयश्च यैः।
[२]जिनमुद्रा समादाय तैरात्मा वञ्चितः शठैः।।४२।।

अर्थ—जिन धूर्तों ने हृदय पर विजय प्राप्त न कर तथा जिनमुद्रा-नग्न दिगम्बर वेष धारण कर इन्द्रियों को सुरक्षित नहीं किया—उन्हें अपने आधीन नहीं बनाया उन्होंने अपने आपको ठगा है।।४२।।

इन्द्रियाणि न शक्नोति जेतुं यः पुरुषोऽधमः।
दीक्षां गृह्वं स्तपः कुर्वन् स किं लोके न लज्जतिः।।४३।।

अर्थ—जी नीच पुरुष इन्द्रियों को जीतने के लिये समर्थ नहीं है वह दीक्षा को ग्रहण करता तथा तप करता हुआ संसार में लज्जित क्यों नहीं होता।।४३।।

इन्द्रियतस्करदुर्धरा अपि खला लुण्ठन्ति जीवस्यतान्
वृत्तज्ञानगुणादिरत्ननिचितं भाण्डं जगत्तारकम्।
ये सन्नह्य यतीश्वरा यमधनुश्चादाय मार्गे [३]स्थितान्

---

१. मनोराज्ञा हि प्रेरितः इत्यपि पाठः।
२. जिनधर्मबहिर्भूतः इत्यपि पाठः।
३. स्थिता इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घ्नन्ति ध्यानशरेण तत्र सुखिनो यान्त्येव मुक्त्यालयम् ।।४४।।

अर्थ—इन्द्रियरूपी दुर्धर तथा दुष्ट चोर सम्यक्चारित्र तथा ज्ञान आदि गुणरूपी रत्नों से व्याप्त जीव के जगत्तारक मान को लूट रहे हैं सो जो मुनिराज तैयार होकर तथा चारित्र रूपी धनुष को लेकर मार्ग में खड़े हुए उन इन्द्रिय रूपी चोरों को ध्यान रूपी वाणों के द्वारा मारते हैं वे ही सुख पूर्वक मोक्ष भवन को प्राप्त होते हैं।।४४।।

नारीसङ्ग त्यज

वरं हुताशने पातो वरं कण्ठे हि सर्पिणी।
नैव चालिङ्गिता स्वस्त्री श्वभ्रगृहप्रतोलिका।।४५।।

अर्थ—अग्नि में पड़ना अच्छा है, और कण्ठ में सर्पिणी का धारण करना अच्छा है परन्तु नरक रूपी घर की मार्ग स्वरूप स्वस्त्री का भी आलिङ्गन अच्छा नहीं है।।४५।।

चित्रादिनिर्मिता नारी मनःक्षोभं करोति वै।
योषित्संसर्गवर्तादौ कथमेकत्र तिष्ठति।।४६।।

अर्थ—जब कि चित्र आदि में निमित्त स्त्रीभी मन में क्षोभ कर देती है तब सगति और वार्तालाप आदि के प्रसङ्ग में वह पुरुष के साथ एक जगह कैसे बैठ सकती है?।।४६।।

एकत्र वसतिः श्लाध्या सर्प [१]व्याघ्रादितस्करैः।
न हि नार्या समं सद्भिः क्षणमेकं प्रशस्यते।।४७।।

अर्थ—सांप, व्याघ्र आदि दुष्ट जीव तथा चौरों के साथ एक जगह रहना अच्छा है परन्तु सत्पुरुषों के द्वारा नारी के साथ एक जगह क्षणभर भी रहना अच्छा नहीं माना जाता।।४७।।

---

१. व्याध्रारि इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्पिणी खादति स्पर्शान्नारी खादेच्च दूरतः।
तस्या दृष्टिविषानाम श्रुत्वा देशान्तरं व्रजेत्।।४८।।

अर्थ–सर्पिणी स्पर्श से खाती है परन्तु स्त्री दूर से ही खा सकती है इसलिये उसका दृष्टिविषा नाम सुन कर उससे भिन्न स्थान को जाना चाहिए।।४८।।

धर्मरत्नमहायतस्करी[१] प्राणिनों नयति दुर्गतिं स्वयम्।
ब्रह्मचर्यदृढमुष्टियष्टिभिस्त्वं निवारय हृदि[२]स्थितां हि ताम्।।४९।।

अर्थ–यह स्त्री रूपी चोर धर्म रूपी रत्न को चुरा कर प्राणियों को स्वयं दुर्गति में ले जाती है इसलिये हे भाई! तू ब्रह्मचर्य रूपी मजबूत मुट्ठियों के प्रहार से हृदय में स्थित उस नारी को निवारण कर।।४९।।

नारीरूपं मध्ये विचारय

श्वभ्रागरइवासारे योनिरन्ध्रे घृणास्पदे।
स्रवन्मूत्रे हि दुर्गन्धे कामी क्रीडति कीटवत्।।५०।।

अर्थ–जो नरक के बिल के समान सार रहित है घृणा का स्थान है, जिससे मूत्र झरता है तथा जो दुर्गन्ध से युक्त है ऐसे सभी योनिछिद्र में कामी पुरुष कीड़ा के समान क्रीड़ा करता है।।५०।।

मुखं श्लेष्मादिसंसक्तं चर्म्मनद्धास्थिसंचयम्।
दुर्गन्धं हि वरस्त्रीणां कामी लिहति श्वानवत्।।५१।।

अर्थ–जो खकार आदि से युक्त है, जिसकी हड्डियों का समूह चर्म से आच्छादित है तथा जो दुर्गन्ध से युक्त है ऐसी स्त्रियों के मुख को इस

---

१. हृदिकिल नारीं।
२. प्राणिनां इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार में कामी पुरुष श्वान के समान चांटता है॥५१॥

मांसपिण्डौ स्तनौ स्त्रीणां भवेत्कृमिकुलोदरम्।

विष्ठादिनिचितं कामी तत्र क्रीडति काकवत्।।५२।।

अर्थ—स्त्रियों के स्तन मांस के पिण्ड है, उदर कृमियों के समूह से व्याप्त तथा विष्ठा आदि से भरा हुआ है फिर भी कामी मनुष्य उस पर काक के समान क्रीड़ा करता है॥५२॥

गौरचर्मावृतं धीर! वस्त्राभरणभूषितम्।

योषिद्रूपं समालोक्य त्वं मध्ये सुविचारय।।५३।।

अर्थ—हे धीर वीर। गोरी चमड़ी से आच्छादित तथा वस्त्राभूषणों से विभूषित स्त्रियों का रूप देख कर तूँ अपने हृदय में विचार कर॥५३॥

कचकुटिलमुकं हि चर्म्मनद्धास्थिराशिं

स्त्रवति नकभिद्वारैः पूतिगन्धं, कुशीलं।

कृमिमलशत पूर्णं धातुविष्ठागृहं वै

भज दृढ़तरब्रह्म स्त्रीसुरूपं त्यज त्वम्।।५४।।

अर्थ—जिसका मुख केशों से कुटिल है, जिसकी हड्डियों का समूह चमड़े से आच्छादित है, जो नौ द्वारों से सदा कुत्सित दुर्गन्ध को झराता रहता है, जो सैकड़ों कृमियों तथा मल से परिपूर्ण है, और धातु तथा विष्ठा का घर है ऐसे स्त्रीसुरूप का हे भाई! तूं त्याग कर और अत्यन्त दृढ़ ब्रह्मचर्य की आराधना कर॥५४॥

कामं त्यज

नयनाभ्यां न पश्येच्च बाह्ये चान्धोऽन्तरे पुनः।

द्वाभ्यां किञ्चिन्न पश्येच्च कामान्धो वस्तुतस्तदा।।५५।।

---

१. नारीसङ्गं इत्यपि पठः २. लिहति इत्यति ३. स्त्रीस्वरूप इत्यपि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–दोनों नेत्रों से अन्धा मनुष्य बाह्य में नहीं देखता है परन्तु अन्तरङ्ग में देखता है। और कामान्ध मनुष्य बाह्य और अन्तरङ्ग दोनों में नहीं देखता है इसलिये वास्तव में कामान्ध मनुष्य ही अन्धा है।।५५।।

कामी करोति यत्कर्म जिह्वोपस्थादिदण्डितः।
तत्फलं श्वभ्रगत्यादौ भुङ्क्ते वाचामगोचरम्।।५६।।

अर्थ–जिह्वा और जननेन्द्रिय से दण्डित कामी मनुष्य जो कार्य करता है उसके फल स्वरूप वह नरकादि गतियों में वचनगोचर दुःख भोगता है।।५६।।

सुखं दुःखं हितं पुण्यं पापं बन्धवधादिकम्।
मरणं वा समीपस्थं कामी वेत्ति न दुर्ग्गतिम्।।५७।।

अर्थ–कामी मनुष्य सुख दुःख हित, पुण्य, पाप, बन्ध, वध आदिक, समीप में स्थित मरण और दुर्गति को नहीं भी जानता है।।५७।।

तिलमात्रसुखार्थं हि कामी त्यजति सद् व्रतम्।
येन मेरुसमं दुःखमिहामुत्र लभेत[१] सः।।५८।।

अर्थ–कामी मनुष्य तिल बराबर अल्प सुख के लिये समीचीन व्रत को छोड़ देता है जिससे वह इस लोक और परलोक में मेरु पर्वत के बराबर भारी दुःख को प्राप्त होता है।।५८।।

[२]कामवाणविषमेण ताडित स्त्यजति धर्मसुरत्नमहो हि यः।
भूरिजन्मबहुदुःख पीडितो व्रजति दुर्गतिमेव स मूढधीः।।५९।।

अर्थ–आश्चर्य है कि विषम कामवाण से ताडित हुआ जो पुरुष धर्म रूपी रत्न को छोड़ देता है वह मूर्ख अनेक जन्मों के बहुत भारी

---

१. लभेत्तदा इत्यपि। २. रथोद्धता द्रुँतविलीम्वित योगेन उपजाति वृज।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःखों से पीड़ित होता हुआ दुर्गति को ही प्राप्त होता है।।५९।।

वीतराग भज

एकचित्तेन यो धीमान् वीतरागं भजेत्सदा।

स्वर्गराज्यादिकं सर्वं भुक्त्वा स तादृशो भवेत्।।६०।।

अर्थ—जो बुद्धिमान् मनुष्य एकाग्रचित्त से सच्चे वीतराग भगवान् की उपासना करता है वह स्वर्ग तथा राज्य आदिक सभी सुखों का उपभोग कर उन्हीं के समान वीतराग हो जाता हैं।।६०।।

वीतरागं परित्यज्य रागद्वेषान्वितं भजेत्।

त्यक्त्वा चिन्तामणीं सोऽत्र लोष्ठं गृह्णाति दुर्मतिः।।६१।।

अर्थ—जो मनुष्य वीतराग भगवान् को छोड़ कर राग द्वेष से युक्त अन्य देव की उपासना करता है वह दुर्बुद्धि इस जगत में चिन्तामणि रत्न को छोड़कर पाषाण खण्ड को ग्रहण करता है।।६१।।

जिनस्मरणमात्रेण शोकक्लेशभयादिकम्।

शाकिनीग्रहरोगादि दारिद्रयं च विनश्यति।।६२।।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के स्मरण मात्र से शोक क्लेश भय आदिक, शाकिनी, ग्रह-पिशाच, रोगादिक तथा दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं।।६२।।

द्वौ देवौ सेवते मूढो द्वौ धर्मौ च गुरू च यः।

उन्मत्तवत् स विज्ञेयः कार्याकार्याविचारकः।।६३।।

अर्थ—जो मूर्ख दो देवों, दो धर्मों और दो गुरुओं की सेवा करता है उसे कार्य तथा अकार्य का विचार न करने वाला उन्मत्त जैसा जानना चाहिये।।६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विबुधकुमुदचन्द्रं सर्वदुःखापहारं
त्रिभुवनपतिसेव्यं धर्मरत्नाकरं वै।
स्वपरहितमपारं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
सकलगुणनिधानं तीर्थनाथं भज त्वम्।।६४।।

अर्थ—जो विद्वान् रूपी कुमुदों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा हैं, सब दुःखों का हरण करने वाले हैं तीनों लोकों के स्वामी-इन्द्र धरणेन्द्र आदि के द्वारा सेवनीय हैं, धर्म रूपी रत्न की खान हैं, स्वपर का हित करने वाले हैं, पार रहित हैं, स्वर्ग और मोक्ष के लिए एक हेतु हैं तथा समस्त गुणों के निधान हैं ऐसे तीर्थनाथ—वीतराग जिनेन्द्र देव की तू सेवा कर।।६४।।

निर्ग्रन्थगुरुसेवां कुरु

ज्ञानचारित्रयुक्तो यो गुरुर्धर्मोपदेशकः।
निर्लोभस्तारको भव्यान् स सेव्यः स्वहितेषिणा।।६५।।

अर्थ—जो ज्ञान और चारित्र से युक्त है, धर्म का उपदेश देने वाला है लोभ रहित है और भव्य जीवों को तारने वाला है वही गुरु, आत्महित की ओर देखने वाले पुरुष के द्वारा सेवा करने योग्य है।।६५।।

यस्तरति स्वयं सोऽन्यं तारयेत् स महागुरुः।
स्वयं मज्जति यः सोऽन्यं कथं तारयितुं क्षमः।।६६।।

अर्थ—जो स्वयं तरता है वही महागुरु दूसरे को तार सकता है। जो स्वयं डूबता है वह दूसरे को तारने के लिये कैसे समर्थ हो सकता है?।।६६।।

निर्ग्रन्थसेवको धीमान् स्वर्गमोक्षादिकं व्रजेत्।
सग्रन्थाराधको मूढः श्वभ्रतिर्यग्गतिं व्रजेत्।।६७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–निर्ग्रन्थगुरु की सेवा करने वाला बुद्धिमान पुरुष स्वर्ग और मोक्ष आदि को प्राप्त होता है तथा सग्रन्थ परिग्रहवान् गुरु की सेवा करने वाला मूर्ख नरक और तिर्यञ्च गति को प्राप्त होता है।।६७।।

मातृपितृकुटुम्बादि-सर्वमुद्धर्तुमक्षमम्।
गुरुस्तारयते जीवान् धर्महस्ताद्भवार्णवे।।६८।।

अर्थ–माता-पिता तथा कुटुम्ब आदि के सभी लोग तारने में असमर्थ हैं परन्तु गुरु, धर्म रूपी हाथ का सहारा देकर जीवों को संसार सागर से तार देता है।।६८।।

यो निर्ग्रन्थगुरुं त्यक्त्वा कुगुरुं सेवते स वै।
कल्पवृक्षं गृहद्वारे छित्वा धत्तूरक वपेत्।।६९।।

अर्थ–जो निर्ग्रन्थ गुरु को छोड़ कर कुगुरु की सेवा करता है वह निश्चय से घर के द्वार पर कल्पवृक्ष को काट कर धतूरे को बोता है।।६९।।

स्वपरमतविचार प्राप्तसंसारपारं
निरुपमगुणयुक्त ज्ञानविज्ञानदक्षम्।
विजितकरणभार भव्यलोकैकपोत
विगतसकलदोषं श्रीगुरुं त भजस्व।।७०।।

अर्थ–हे भाई! जो निज और पर मत का विचार करते हैं, जिन्होंने संसार का पार प्राप्त कर लिया है, जो अनुपम गुणों से युक्त हैं, ज्ञान और विज्ञान में 'दक्ष है', जिन्होंने इन्द्रिय समूह को जीत लिया है, जो भव्य जीवों के लिये एक जहाज के समान हैं तथा जिनके समस्त दोष नष्ट हो गये हैं उन श्री गुरु की तूं उपासना कर।।७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपः कुरु

तपः करोति यो धीमान् मुक्तिश्रीरञ्जिताशयः।
स्वर्गो ग्रहाङ्गणे तस्य राज्यसौख्यस्य का कथा।।७१।।

अर्थ–मुक्ति रूपी लक्ष्मी में आसक्त चित्त होता हुआ जो बुद्धिमान् तप करता है, स्वर्ग उसके घर के आंगन में रहता है राज्य सुख की तो कथा ही क्या है?।।७१।।

तपसालंकृतो जीवो यद् यद् वस्तु समीहते।
तत्तदेव समायाति भुवनत्रितये ध्रुवम्।।७२।।

अर्थ–तप से सुशोभित जीव जिस जिस वस्तु की इच्छा करता है वही वस्तु उसे तीनों लोकों में नियम से प्राप्त होती है।।७२।।

तपोहीनो नरो ज्ञेयः क्षेत्रनिर्मापितो यथा।
इहलोके च रोगी स्यादमुत्र दुर्गतिं व्रजेत्।।७३।।

अर्थ–तप से हीन मनुष्य खेत की रक्षा के लिये बनाये हुये कृत्रिम मनुष्य के समान जानना चाहिये। वह इस लोक में रोगी होता है और परलोक में दुर्गति को प्राप्त होता है।।७३।।

तीर्थनाथश्चतुर्ज्ञानयुक्तो देवार्चितो ध्रुवम्।
मुक्तिनाथ स्तपः कुर्यादन्यै किं क्रियते न तत्।।७४।।

अर्थ–जो चार ज्ञानों से युक्त हैं, देवों के द्वारा पूजित तथा निश्चित ही मुक्ति के स्वामी होने वाले हैं ऐसे तीर्थंकर भी जब तप करते हैं तब दूसरों के द्वारा वह क्यों नहीं किया जाता?।।७४।।

कर्मपर्वतनिपातनवज्रं स्वर्गमुक्तिसुखसाधनमन्त्रम्।
मन्मथेन्द्रियदमं शुभबीजं त्वं तपःकुरु समीहितदानम्।।७५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो कर्म रूपी पर्वत को गिराने के लिये वज्र है, स्वर्ग और मोक्ष का सुख प्राप्त कराने वाला मन्त्र है, कामेन्द्रिय को दमन करने वाला है, शुभ का बीज है तथा इच्छित वस्तुओं को देने वाला है ऐसा तप तूं कर।।७५।।

करोति सत्तपो यस्तु स्वर्गराज्यं हि प्राप्य सः।
मुक्तिमालभते श्रेष्ठिनन्दनो नागदत्तवत्।।७६।।

अर्थ–जो मनुष्य समीचीन तप करता है वह स्वर्ग का राज्य पा कर श्रेष्ठि पुत्र नागदत्त के समान मुक्ति को प्राप्त होता है।।७६।।

जिह्वावशं कुरु

यो जिह्वालम्पटो मूढः खाद्याखाद्यं न मन्यते।
अखाद्यं भक्षयित्वा स दुर्गतिं याति पापधीः।।७७।।

अर्थ–जो मूर्ख रसना इन्द्रिय का लोभी होता हुआ खाद्य और अखाद्य को नहीं मानता है–भक्ष्य और अभक्ष्य का विचार नहीं रखता है वह पापबुद्धि अखाद्य-अभक्ष्य का भक्षण कर दुर्गति को प्राप्त होता है।।७७।।

तिलमात्रसमे कन्दे अनन्ता जीवसंस्थितिः।
तस्य भक्षणतो भुक्ताः सर्वे जीवाः कुदृष्टिभिः।।७८।।

अर्थ–तिल के बराबर कन्द में अनन्त जीवों की स्थिति है उसके खाने से मिथ्या दृष्टि जीवों के द्वारा वे सब जीव खा लिये जाते हैं।।७८।।

सर्षपेण समं स्वादं जिह्वलम्पट आचरेत्।
पापं भूरिभवैदुःखं येन मेरुसमं भजेत्।।७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जिह्वा इन्द्रिय का लोभी मनुष्य सरसों के बराबर स्वाद को प्राप्त होता है और उसके फल स्वरूप अनेक भवों में मेरु पर्वत के बराबर तीव्र दुःख को भोगता है॥७९॥

जिह्वावशां न यः कुर्यात् सर्वभक्षणशाकिनीम्।
दीक्षामादाय कुर्वन्स तपः किं न हि लज्जते॥८०॥

अर्थ–जो मनुष्य सबका भक्षण करने के लिये शाकिनी के समान जिह्वा इन्द्रिय को वश में नहीं करता है वह दीक्षा लेकर तप करता हुआ लज्जित क्यों नहीं होता?॥८०॥

मधु भुङ्क्ते बिन्दुमात्रं यो रोगेऽपि कुधीः स वै।
रोगस्य भाजनं भूत्वा श्वभ्रादिकुगतिं व्रजेत्॥८१॥

अर्थ–जो दुर्बुद्धि रोग में भी बिन्दुमात्र मधु को खाता है वह रोग का पात्र होकर नरकादि कुगति को प्राप्त होता है॥८१॥

जिह्वां भो बुध! सर्वभक्षणपरां पापस्य दुःखस्य वा
खानिं स्वर्गगृहार्गलां दृढतरां श्वभ्रालये दीपिकाम्।
सद्धर्मालयतस्करीं दृढतरै सारैर्व्रतैः पासिभि
र्बध्वा त्वं भज मुक्तिसङ्गसुखदं वैराग्यमन्त्रं दृढम्॥८२॥

अर्थ–हे विद्वान्! जो सबको खाने में तत्पर है, पाप अथवा दुःख की खान है, स्वर्ग रूपी घर की अत्यन्त मजबूत आगल है, नरक रूप घर को प्रकाशित करने वाली दीपिका है, और समीचीन धर्म रूपी घर को लूटने वाली है उस जिह्वा इन्द्रिय को तूं अत्यन्त मजबूत तथा श्रेष्ठ व्रत रूप रस्सियों के द्वारा बांध कर मुक्ति लक्ष्मी के समागम सम्बन्धी सुख को देने वाले अतिशय दृढ़ वैराग्य रूप मन्त्र की आराधना कर॥८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वेषं जहि

वीतरागे मुनौ शास्त्रे यो द्वेषं कुरुतेऽधमः।
धर्मविद्भिर्जनै सोऽपि निन्द्यो निन्द्यगतिं व्रजेत्।।८३।।

अर्थ–जो नीच वीतराग देव, गुरु और शास्त्र में द्वेष करता है वह भी धर्मज्ञमनुष्यों के द्वारा निन्द्य होता हुआ निन्द्य गति-नरकादिदुर्गति को प्राप्त होता है।।८३।।

यदि कश्चित् कुधीः कुर्यात् बधबन्धादिताडनम्।
मरणं चापि तस्यैव द्वेषस्त्याज्यो विवेकिभिः।।८४।।

अर्थ–यदि कोई दुर्बुद्धि वध बन्दन आदि ताड़न अथवा मरण तक करे तो भी विवेकीजनों को द्वेष छोड़ने योग्य है।।८४।।

द्वेषं त्यक्तुमशक्तो यः क्लेशं याति स आयतम्।
श्वभ्रादिदुर्गतौ नित्यं द्विष्यमाणो हि नारकैः।।८५।।

अर्थ–जो मनुष्य द्वेष को छोड़ने के लिये असमर्थ है वह नरकादि दुर्गति में नारकियों के द्वारा द्वेष को प्राप्त होता हुआ दीर्घ क्लेश को पाता है।।८५।।

कामक्रोधादिशत्रूणां पापमोहादिविद्विषाम्।
द्वेषमुच्चाटनं सर्वं कर्त्तव्यं च महर्षिभिः।।८६।।

अर्थ–महर्षियों को काम-क्रोधादिकशत्रुओं तथा पाप मोहआदिक रिपुओं पर द्वेष और उच्चाटन सभी कुछ करना चाहिये। भावार्थ–द्वेष और उच्चाटन यदि करना हो तो काम, क्रोध, पाप और मोह आदि शत्रुओं का करना चाहिये न कि मनुष्यों का।।८६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नरकगृहकपाटोद्धाटनं पापबीजं
सकलदुरितहेतु मुक्तिनिर्णाशकं वै।
मुनिजनघननिन्द्यं द्वेषशत्रुं जहि त्वं
दृढतरशमशस्त्रैश्चित्तहस्ते गृहीत्व।।८७।।

अर्थ–हे भाई! तूं जो नरक रूपी घर के किवाड़ खोलने वाला है, पाप का बीज है, समस्त पापों का हेतु है, मुक्ति को नष्ट करने वाला है, और मुनिजनों के द्वारा अत्यन्त निन्दनीय है, ऐसे द्वेष रूपी शत्रु को तूं चित्त रूपी हाथ में पकड़ कर शान्ति रूपी सुदृढशस्त्रों से नष्ट कर।।८७।।

रागं त्यज

पुत्रमित्रकलत्रादि सर्वं गृहकुटुम्बकम्।
धनधान्यादिसद्वस्तु दृष्ट्वा रागं त्यजेन्मुनिः।।८८।।

अर्थ–पुत्र मित्र स्त्री आदिक सभी घर कुटुम्ब को तथा धन धान्यादिक समीचीन वस्तुओं को देखकर मुनि को क्रोध का त्याग करना चाहिये।।८८।।

इन्द्रियाहारकायादि सर्वं वसतिकामपि।
लब्ध्वोपकरणं सारं छात्रं रागं त्यजेन्मुनिः।।८९।।

अर्थ–इन्द्रिय, आहार, शरीर आदिक सभी वस्तुएं, वसतिका, उपकरण तथा श्रेष्ठ शिष्य को पाकर भी मुनि को राग छोड़ना चाहिये।।८९।।

रागी बध्नाति कर्माणि निन्द्यं कर्म करोति च।
भोगस्य काङ्क्षया तस्मादिहामुत्र च दुःखभाक्।।९०।।

अर्थ–रागी जीव कर्मों को बांधता है और भोग की आकांक्षा से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निन्दनीय काम करता है।।९०।।

रागं हन्तुमशक्तो यः शरीरादिसमुद्भवम्।
कायक्लेशादिकं कुर्वन् निर्लज्जः किं भवेन्न सः।।९१।।

अर्थ—जो मनुष्य शरीर आदि से उत्पन्न होने वाले राग को नष्ट करने के लिये असमर्थ है फिर भी काम क्लेश आदि तप को करता है वह निर्लज्ज क्यों नहीं है?।।९१।।

रागशत्रुरशुभो हि नराणां दुर्गतिं नयति[1] धर्मविघाती।
येन सोऽपि निहतः शमशस्त्रैस्तस्य मुक्तिरुपयाति स्वयं वै।।९२।।

अर्थ—धर्म को नष्ट करने वाला राग रूप अशुभ शत्रु मनुष्यों को दुर्गति में ले जाता है। जिस मुनि ने शान्ति रूप शस्त्रों के द्वारा उस राग रूपी शत्रु को नष्ट कर दिया है मुक्ति उसके समीप स्वयं आती है।।९२।।

क्रोधं जहि

धनधान्यादिवस्त्वर्थं कुटुम्बादिकृतेऽथवा।
बधबन्धादिके प्राप्ते क्रोधस्त्याज्यो विवेकिभिः।।९३।।

अर्थ—धनधान्यादिक वस्तुओं के लिये अथवा कुटुम्ब आदि के लिये वधबन्धन आदिक प्राप्त होने पर विवेकीजनों को क्रोध छोड़ना चाहिये।।९३।।

क्रोधानलमहादाहः समुत्पन्नः शरीरिणाम्।
निर्दहति तपोवृत्तं धर्मं द्वैपायनादिवत्।।९४।।

---

१. धर्मतस्कर इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—उत्पन्न हुआ क्रोधाग्नि का तीव्रदाह प्राणियों के तप चारित्र और धर्म को द्वैपायन आदि मुनियों के समान भस्म कर देता है।।९४।।

पूर्वं शोषयते गात्रं क्रोधाग्निः प्रकटीस्थितः।
पश्चादन्यानपि दद्यात् दुःखशोकादि [1]दुर्गतिम्।।९५।।

अर्थ—प्रकट हुई क्रोधाग्नि पहले शरीर को सुखाती है पीछे अन्य लोगों को भी यह क्रोधाग्नि दुःख शोक आदिक तथा दुर्गति को देती है।।९५।।

तावत्तपो व्रतं ध्यानं स्वस्थं चित्तं दयादिकं।
यावत्क्रोधो न जायेत तस्मात्कोपं त्यजेन्मुनिः।।९६।।

अर्थ—जब तक क्रोध उत्पन्न नहीं होता है तभी तक तप, व्रत, ध्यान, स्वस्थचित्त तथा दया आदिक विद्यमान रहते हैं। अतः मुनि को क्रोध छोड़ना चाहिये।।९६।।

क्रोधशत्रुरतिदुःखदो नृणां धर्मरत्नहरणे च तस्करः।
श्वभ्रमूलगृहप्रापणपान्थो घातनीय इह शान्तिकृपाणैः।।९७।।

अर्थ—जो मनुष्यों को अतिशय दुःख देने वाला है, धर्म रूपी रत्न का अपहरण करने में चोर है और नरक रूपी मूलगृह को प्राप्त कराने के लिये पथिक है ऐसा यह क्रोध रूपी शत्रु, इस जगत में शान्ति रूपी तलवार के द्वारा घात करने के योग्य है।।९७।।

मानं त्यज

तपोज्ञानादिसंभूतो मदो न क्रियते बुधैः।
अपेक्षया हि पूर्वस्य यतो नाचर्यते लवः।।९८।।

---

१. दुर्गतीन् इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–विद्वानों के द्वारा तप और ज्ञान से उत्पन्न हुआ मद नहीं किया जाता है क्योंकि वे सोचते हैं कि पूर्व की अपेक्षा इस समय एक अंश रूप भी आचरण नहीं होता॥९८॥

अहंकार त्यजेद् धीमान् धनधान्यादिवस्तुषु।
यतो न शाश्वतं किञ्चिद् दुष्टराजाग्नितस्करात्॥९९॥

अर्थ–बुद्धिमान् मनुष्य को धनधान्यादिक पदार्थों के विषय में अहकार का त्याग करना चाहिये क्योंकि दुष्ट राजा अग्नि और चोर के कारण कुछ भी स्थायी नहीं है॥९९॥

यो मदान्धो न जानाति हिताहितविवेचनम्।
स पूज्येषु मुदं कृत्वा श्वानगर्दभभाग्भवेत्॥१००॥

अर्थ–जो मदान्ध मनुष्य हित अहित के विवेक को नहीं जानता है वह पूज्य पुरुषों के ऊपर अहंकार कर श्वान और गर्दभ पर्याय को प्राप्त होता है॥१००॥

अहंकारोऽपि कर्तव्यः कामक्रोधपदादिषु।
कर्मेन्द्रियचरित्रेषु सर्वेषु गुणशालिभिः॥१०१॥

अर्थ–अहंकार भी यदि करना है तो गुणशाली मनुष्यों को काम क्रोध मद आदि पर तथा कर्म और इन्द्रियों की सभी प्रवृत्तियों पर करना चाहिये॥१०१॥

दुरिततरुसुनीरं कर्मक्षेत्रस्य बीजं
कुमदकरमसारं धर्मवल्लीकुठारम्।

---

१. रथोद्धता स्वागतामेलनादुपजातिवृत्तम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुगतिगमनहेतुं मानशत्रुं जहि त्वं
सकलमपि सुसारं मार्दवं भो भजस्व।।१०२।।

अर्थ—हे भाई! जो पाप रूपी वृक्ष को सींचने के लिये जल है, कर्म रूपी खेत का बीज है, कुत्सित मद को करने वाला है, सार रहित है धर्म रूपी लता को काटने के लिये कुठार है, और दुर्गति की प्राप्ति का कारण है, ऐसी मान रूपी शत्रु को तूं नष्ट कर तथा अत्यन्त सार पूर्ण समस्त मार्दव धर्म की आराधना कर।।१०२।।

मायां त्यज

कूटद्रव्यमिवासारं तपोधर्मव्रतादिकम्।
मायाविनामनुष्ठानं सर्वं भवति निष्फलम्।।१०३।।

अर्थ—मायावी मनुष्यों का तप धर्म तथा व्रत आदिक माया-निर्मित द्रव्य के समान असार है। यही नहीं, उनका सब अनुष्ठान निष्फल है।।१०३।।

मायां करोति यो मूढ इन्द्रियादिकसेवनम्।
गुप्तं पापं स्वयं तस्य व्यक्तं भवति कुष्ठवत्।।१०४।।

अर्थ—जो मनुष्य इन्द्रिय आदि की सेवा में माया करता है उसका गुप्तपाप कुष्ठरोग के समान स्वयं प्रक्ट हो जाता है। भावार्थ–जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों को छिपकर सेवन करता है उसका तज्जन्य पाप अपने आप प्रकट हो जाता है।।१०४।।

कुटुम्बपरिवारादि-कायगृहधनादिषु।
विनश्वरेषु भोगेषु मायां कः कुरुते सुधीः।।१०५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–कुटुम्ब परिवार आदि, शरीर घर धन आदि तथा विनश्वर भोगों के विषय में कौन बुद्धिमान् माया करता है? अर्थात् कोई नहीं॥१०५॥

मायायुक्तं वचस्त्याज्यं माया संसारवर्द्धिनी।
यदि सङ्गपरित्यागः कृतः किं मायया तव।।१०६।।

अर्थ–मायायुक्त वचन छोड़ना चाहिये। माया संसार को बढ़ाने वाली है। हे साधो! यदि तूने परिग्रह का त्याग किया है तो फिर तुझे माया से क्या प्रयोजन है?॥१०६॥

[1]आर्जवं सकलधर्मकारणं स्वर्गमुक्तिसुखसाधनहेतुम्।
प्राप्य यान्ति मुनयः सुरालयं त्वं सदा कुरु तमार्जवभावम्।।१०७।।

अर्थ–आर्जव समस्त धर्मों का कारण है तथा स्वर्ग और मुक्ति सुख को प्राप्ति का हेतु है। उस आर्जव धर्म को प्राप्त कर मुनि स्वर्ग को प्राप्त होते हैं इसलिये ये भाई! तू सदा आर्जवभाव को कर॥१०७॥

लोभं त्यज

दीक्षामादाय यो नित्यं द्रव्यं गृहणाति दुष्टधीः।
अम्बां विक्रीय दासीं स गृह्णान् निन्द्यो बुधैः स्मृतः।।१०८।।

अर्थ–जो दुर्बुद्धि मनुष्य दीक्षा लेकर निरन्तर द्रव्य का संग्रह करता है वह माता को बेंच कर दासी को ग्रहण करने वाले के समान हे विद्वानों द्वारा निन्द्य माना गया है॥१०८॥

कटिसूत्रं परित्यज्य गृहणन् द्रव्यादिकं मुनिः।
यः स किं न हि लज्जेत लोकमध्ये च रङ्कवत्।।१०९।।

१. रथोद्धता स्वागतामेलनादुपजातिवृत्तम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो मुनि कमर के धागा को छोड़ कर द्रव्यादिक को ग्रहण करता है वह लोगों के बीच रङ्क के समान लज्जित क्यों नहीं होता है?॥१०९॥

धनधान्यादिकं सर्वं त्यक्त्वा गृह्णन् पुनः स्वयम्।

यो निर्लज्जः स किं न स्याद् वान्तस्वादनतत्परः।।११०।।

अर्थ–जो निर्लज्ज मनुष्य धन धान्यादिक सभी परिग्रह का त्याग कर उसे पुनः स्वयं ग्रहण करता है वह वमन किये हुए पदार्थ का स्वाद लेने में तत्पर क्यों नहीं हैं? भावार्थ–त्याग की हुई वस्तु को फिर से ग्रहण करना वमन किये हुए पदार्थ के खाने के समान है॥११०॥

लोभशत्रुरतिदुःसहोऽङ्गिनां सर्ववस्तुपरिभक्षणलोलः।

हन्ति लोकस्वजनानपि तस्य यो वशो व्रजति सोऽपि दुर्गतिम।।१११।।

अर्थ–समस्त वस्तुओं के खाने में लम्पट लोभ रूपी शत्रु प्राणियों के लिये अत्यन्त दुःसह है। वह लोभ रूपी शत्रु लोक में आत्मीयजनों को भी को प्राप्त होता है॥१११॥

सन्तोषं कुरु सर्वसौख्यजनकं दुःखार्णवोत्तारक

सद्धर्ममलरत्नसागरपरं पापान्तकं निस्पृहम्।

मोक्षस्वर्गवशीकरं गुणनिधिं तीर्थेश्वरैः सेवितं

चिन्तादुःखभयादिदूरमसमं लोभं त्यज त्वं सदा।।११२।।

अर्थ–जो समस्त सुखों का जनक है, दुःख रूपी सागर से तारने वाला है सद्धर्मरूपीनिर्मल रत्नों का उत्कृष्ट सागर है, पापों का अन्त करने वाला है, निःस्पृहं है, मोक्ष तथा स्वर्ग को वश करने वाला हे, गुणों का भण्डार है, तीर्थंकरों के द्वारा सेवित है तथा चिन्ता दुःख और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भय आदि से दूर है ऐसे संतोष को धारण कर एवं विषय लोभ का सदा-त्याग कर॥११२॥

दयां कुरू

जीवहिंसादिसंकल्पं यः करोति नरोऽधमः।
स पापसंग्रहं कृत्वा दुर्गतिं याति मत्स्यवत्॥११३॥

अर्थ—जो नीच मनुष्य जीवहिंसा आदि का संकल्प करता है वह पाप का संग्रह कर तण्डुलमच्छ के समान दुर्गति को प्राप्त होता है॥११३॥

जीवहिंसासमं पापं न भूतं न भविष्यति।
न स्यादत्र सदा लोके तस्मात्त्वं त्यज सर्वथा॥११४॥

अर्थ—चूंकि इस लोक में जीवहिंसा के समान पाप न था न होगा और न है इसलिये तू उसका सब प्रकार से त्याग कर॥११४॥

दानं पूजातपश्चैव ध्यानं ध्येयादिकं वृथा।
अहिंसाव्रतवैफल्याद् भवति प्राणिनां ध्रुवम्॥११५॥

अर्थ—अहिंसा व्रत के बिना प्राणियों का दान, पूजा, तप, ध्यान और ध्येय आदिक निश्चित ही व्यर्थ है॥११५॥

हिंसां श्वभ्र [1]प्रतोलिकां भयप्रदा स्वर्गार्गलां दुःखदां
रोगक्लेशकुजन्मबन्धजनकां पापप्रदां प्राणिनाम्।
सर्वानर्थपरम्परार्पणपरां मुक्त्यङ्गनाभीतिदां
भ्रातस्त्वं त्यज सर्वप्राणिषु दयां दत्वा विमुक्त्याप्तये॥११६॥

अर्थ—जो नरक का मार्ग है, भय प्रदान करने वाली है स्वर्ग की आगल है, दुःख देने वाली है, रोग क्लेश कुजन्म तथा बन्ध को उत्पन्न

---

१. 'प्रहेवा' इति पिङ्गलसूत्रेण प्रहे परे संयुक्तद्यत्य स्वरस्य विकल्पयोन दीर्घत्व भवति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वाली है, पापदायक है, प्राणियों के लिये समस्त अनर्थों की परम्परा प्रदान करने में तत्पर है और मुक्तिरूपी स्त्री को भय देने वाली है, ऐसी हिंसा को हे भाई! तूं छोड़ और मुक्ति की प्राप्ति के लिये समस्त प्राणियों पर दया कर॥११६॥

सर्वप्राणिदयां जिनेन्द्रगदितां स्वर्गार्गलोद्घाटिकां
सद्विद्यामलमुक्तिमान्यजननीं सौख्याकरां धर्मदाम्
संसाराम्बुधितारिकां गुणकरां पापान्तिकां प्राणिनां
सद्रत्नत्रयभूमिकां कुरु सदा सर्वेषु जीवेषु ताम्।।११७।।

अर्थ—हे भाई! तूं सदा सब जीवों पर वह दया कर, जो कि जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कही गई है, स्वर्ग के आंगल को खोलने वाली है, समीचीनविद्या और निर्मलमुक्ति को माननीय माना है, सुख की खान है संसाररूपी समुद्र से तारने वाली है गुणों को करने वाली है, प्राणियों के पाप को नष्ट करने वाली है और सम्यक् रत्नत्रय की भूमिका है॥११७॥

अहिंसाव्रतसारेण पूज्यो मातङ्गवद्भवेत्।
धातादङ्गी भवेन्निनन्द्यो धनश्रीरिव सर्वथा।।११८।।

अर्थ—अहिंसाव्रत के प्रभाव से मनुष्य यमपाल चाण्डाल के समान पूज्य होता है और हिंसा करने से धनश्री के समान सर्वथा निन्द्य होता है॥११८॥

सत्यं वद

सत्यं हितं मितं ब्रूयान्मर्महिंसादिवर्जितम्।
[1]धर्मोपदेशकं सारं मुनीशः कर्णसौख्यदम्।।११९।।

१. धर्मोपदेशकरमित्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मुनिराज को सत्य, हितकारी परिमित मर्मघात आदि दोषों से रहित धर्म का उपदेश करने वाले, श्रेष्ठ तथा कानों को सुखदायक वचन बोलना चाहिये॥११९॥

कर्कशं निष्ठुरं निन्द्यं पापाढ्यं दुःखकारणम्।
हिंसादिकरमन्यञ्च न वक्तव्यं विवेकिभिः॥१२०॥

अर्थ—विवेकी मनुष्यों को कर्कश, निष्ठुर, निन्द्य, पापयुक्त दुःख का कारण हिंसा, आदि को करने वाला तथा और भी इसी प्रकार का वचन नहीं बोलना चाहिये॥१२०॥

जिह्वाख्या सर्पिणी नित्यं स्थिता सद्वदने विले।
लोकं जिघत्सति त्वं हि सत्यमन्त्रेण कीलय॥१२१॥

अर्थ—असत्-दुर्जन मनुष्यों के मुख रूपी बिल में जो जिह्वा नाम की सर्पिणी निरन्तर रहती है वह जगत् को खाना चाहती है सो तूँ उसे सत्यरूपी मन्त्र के द्वारा कीलित कर दे॥१२१॥

प्राणान्तेऽपि न वक्तव्यमसत्यं निन्दितं बुधैः।
असत्यवचने जीवो निन्द्य श्वभ्रं हि गच्छति॥१२२॥

अर्थ—विद्वानों को मरण का अवसर आने पर भी असत्य एवं निन्दित वचन नहीं बोलना चाहिये अथवा विद्वानों द्वारा निन्दित असत्य वचन मरणकाल में भी नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि असत्य वचन बोलने वाला जीव निन्दनीय नरक को जाता है॥१२२॥

बुधजनपरिसेव्यं स्वर्गमोक्षकैद्वारं
सकलसुखनिधानं धर्मबीजं गुणाढ्यम्।
जिनवचनविविक्तं सर्वपापापहारं
शिवकरमपिसारं त्वं बचो ब्रूहि सत्यम्॥१२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो विद्वज्जनों के द्वारा सेवनीय है, स्वर्ग और मोक्ष का एक द्वार है, समस्त सुखों का निधान है, धर्म का बीज है, गुणों से सहित है जिनेन्द्र भगवान् के वचनों से पवित्र है, समस्त पापों को हरने वाला है, मोक्ष को करने वाला है और अत्यन्त श्रेष्ठ है ऐसा सत्य वचन तूं बोल॥१२३॥

सारसत्यामृतादङ्गी पूज्यः स्याद् धनदेववत्।
लोके चासत्यदोषेण निन्द्यः सत्यादिघोषवतु।।१२४।।

अर्थ—यह जीव श्रेष्ठ सत्य वचन रूप अमृत से धनदेव के समान लोक में पूज्य होता है और असत्य वचन के दोष से सत्यघोष के समान लोक में निन्द्य होता है॥१२४॥

अदत्तं त्यज

विस्मृतं पतितं नष्टमदत्तं बुधनिन्दितम्।
धनधान्यादि सर्वं च परस्वं त्यज सर्वदा।।१२५।।

अर्थ—जो भूला हुआ हो, पड़ा हुआ हो, नष्ट हुआ हो और विद्वानों के द्वारा निन्दित हो ऐसा बिना दिया हुआ धन धान्यादिक सभी परधन तूं सदा के लिये छोड़॥१२५॥

परद्रव्यं समादत्ते यो मूढो वञ्चनादिभिः।
स्थितं तस्य गृहाद्याति दारिद्रयं सन्मुखायते।।१२६।।

अर्थ—जो मूर्ख मनुष्य धोखा आदि के द्वारा दूसरे के धन को लेता है उसका पहिले का सुरक्षित धन घर से चला जाता है और दरिद्रता उसके सन्मुख आती है॥१२६॥

परद्रव्यमतिस्तोकं यो गृहणति स तस्करः।
वधबन्धादिकं प्राप्य श्वभ्रं गच्छति दुर्मतिः।।१२७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो दुर्बुद्धि पुरुष दूसरे के अत्यन्त अल्प द्रव्य को भी ग्रहण करता है वह चोर है तथा वध बन्धनादि को प्राप्त कर नरक को जाता है॥१२७॥

सत्याचरणाल्लक्ष्मीः स्वयमप्यायाति पुण्ययुक्तस्य।

असदाचारस्य पुनः गृहे स्थिता चापि संनश्यति।।१२८।।

अर्थ–सत्य आचरण करने से पुण्यात्मा जीव को लक्ष्मी स्वयं प्राप्त होती है और असदाचार से युक्त मनुष्य की, घर में स्थित भी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है॥१२८॥

सकलविबुधनिन्द्यं दुःखसंतापबीजं

विषमनरकमार्गं बन्धविच्छेदहेतुम्।

कुगतिकरमसारं पापवृक्षस्य कन्दं

त्यज सकलमदत्तं त्वं सदा मुक्तिहेतोः।।१२९।।

अर्थ–जो समस्त विद्वानों के द्वारा निन्दनीय है, दुःख और संताप का बीज है, विषमनरक का मार्ग है, बन्ध और विच्छेद का कारण है, कुगति को करने वाला है, असार है और पापरूप वृक्ष का कन्द है ऐसे समस्त अदत्तग्रहण को तूं मुक्ति प्राप्ति के हेतु सदा के लिये छोड़॥१२९॥

अदत्तपरिहारेण पूज्यः स्याद् वारिषेणवत्।

अदत्तादानतः प्राणी निन्द्यः स्यात्तापसादिवत्।।१३०।।

अर्थ–हे प्राणिन् अदत्तग्रहण का परित्याग करने से वारिषेण के समान पूज्य होता है और अदत्तग्रहण करने से तापस आदि के समान निन्दनीय होता है॥१३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीलं भज

ब्रह्मचर्य भवेत्सारं सर्वेषां गुणशालिनाम्।
ब्रह्मचर्यस्य भङ्गेन गुणाः सर्वे पलायिताः।।१३१।।

अर्थ—समस्त उत्तम गुणों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है। ब्रह्मचर्य का भङ्ग करने से समस्त गुण भाग जाते हैं।।१३१।।

कामनलमहादाहो वर्तते यस्य चेतसि।
व्रतचारित्रसद्वृक्षा भस्मीभूता भवन्ति वै।।१३२।।

अर्थ—जिस मनुष्य के चित्त में कामाग्नि की महादाह विद्यमान है निश्चय से उसके व्रत-चारित्ररूप समीचीनवृक्ष भस्मीभूत हो जाते हैं।।१३२।।

ब्रह्मचर्यमपि पालय सारं धर्मसारगुणदं भवतारम्।
स्वर्गमुक्तिगृहप्रापणहेतुं दुःखसागरविलङ्घनसेतुम्।।१३३।।

अर्थ—हे भाई! तूं उस ब्रह्मचर्य का भी पालन कर जो सारपूर्ण है, धर्म के श्रेष्ठ गुणों को देने वाला है, संसार से तारने वाला है, स्वर्ग और मुक्ति रूपी घर की प्राप्ति का हेतु है तथा दुःखरूपीसागर से पार होने के लिये सेतु–पुल है।।१३३।।

ब्रह्मचर्यविकलो हि नरो यो यत्र तत्र स्वजनैरवगण्यः।
दुःखशोकवधबन्धसमस्तं प्राप्य श्वभ्रमभिगच्छति सोऽपि।।१३४।।

अर्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से रहित होता है वह जीव तहाँ आत्मीयजनों से भी तिरस्कृत होता है तथा दुःख शोक बन्ध बन्धन आदि सभी कुछ पाकर नरक को प्राप्त होता है।।१३४।।

संसाराम्बुधितारकं सुखकरं देवैः सदा पूजितं
मुक्ति द्वारमपारपुण्यजनकं धीरैः सदा सेवितम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शनज्ञानवृत्तगुणसद्भाण्डं पवित्रं पर
चात्रामुत्र हि सौख्यगेहमपरं त्वं ब्रह्मचर्य भज।।१३५।।

अर्थ–जो संसाररूपी समुद्र से तारने वाला है, सुखकारी है, देवों के द्वारा सदा पूजित है, मुक्ति का द्वार है, अपार पुण्य को उत्पन्न करने वाला है, धीर वीर मनुष्यों के द्वारा सदा सेवित है, सम्यंगदर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी सद्गुणों का भण्डार परमपवित्र है, इस लोक तथा पर लोक सम्बन्धी सुखों का घर है और जिसके समान दूसरा गुण नहीं है ऐसे ब्रह्मचर्य का तूं पालन कर।।१३५।।

शीलव्रतसमायुक्तः पूज्यो नीलीव सोऽमरैः।
निन्दनीयो विना तेन प्राणी चारक्षकादिवत्।।१३६।।

अर्थ–जो मनुष्य शीलव्रत से सहित होता है वह नीली के समान देवों से पूज्य होता है और जो शीलव्रत से रहित होता है वह कोतवाल के समान निन्दनीय है।।१३६।।

परिग्रहं त्यज

परिग्रहग्रहग्रस्तः सर्वं गिलितुमिच्छति।
धनं न तस्य सन्तोषः सरित्पूरमिवार्णवः।।१३७।।

अर्थ–जिस प्रकार समुद्र नदी के समस्त पूर को निगलना चाहता है उसी प्रकार परिग्रह रूपी पिशाच से ग्रस्त मनुष्य भी समस्त धन को निगलना चाहता है। उसे सन्तोष नहीं होता।।१३७।।

यः परिग्रहमत्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति मूढधीः।
खपुष्पैः कुरुते सारं स वन्ध्यासुतशेखरम्।।१३८।।

अर्थ–जो मूढ बुद्धि मनुष्य परिग्रह का त्याग किये बिना मुक्ति की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा करता है वह आकाश के पुष्पों से वन्ध्यासुत का उत्तम सेहरा बनाता है॥१३८॥

द्रव्यं दुःखेन चायाति स्थितं दुःखेन रक्ष्यते।
दुःखशोककरं पापं धिग्द्रव्यं दुःखभाजनम्।।१३९।।

अर्थ—धन दुःख से आता है और स्थित धन की दुःख से रक्षा होती है। यह धन दुःख और शोक को करने वाला पाप स्वरूप है अतः दुःख के पात्र स्वरूप इस धन को धिक्कार है॥१३९॥

शय्याहेतुतृणादानं मुनीनां निन्दितं बुधैः।
यः स द्रव्यादिकं गृहणन् किं न निन्द्यो जिनागमे।।१४०।।

अर्थ—शय्या के हेतु तृण (प्याल) का संग्रह करना भी मुनियों के लिये विद्वानों ने निन्दित बताया है फिर जो धन आदि को ग्रहण करता है वह जिनागम में निन्दनीय क्यों नहीं है? अवश्य है॥१४०॥

परिग्रहमहाभरं सकलदुःखदानाकरं
असंख्यभवकारणं मुनिजनैर्महानिन्दितम्।
अनेकगुरुकष्टजं भयवधादिदुःखास्पदं
त्यज त्वमपि सर्वदा सकलमोक्षसौख्याय वै।।१४१।।

अर्थ—जो समस्त दुःखों को देने की खान है, असंख्यभवों का कारण है, मुनिजनों के द्वारा अत्यन्त निन्दित है, जो अनेक प्रकार के बहुत भारी कष्टों से उत्पन्न होता है, और भय तथा वध आदि दुःखों का स्थान है ऐसे परिग्रह के महान् भार को तूं भी सम्पूर्ण मोक्ष सुख की प्राप्ति के उद्देश्य से निश्चय पूर्वक सदा के लिये त्याग कर॥१४१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रहणप्रमाणेन पूजनीयो जयादिवत्।
प्राणी लोभाकुलो निन्द्यः स्यात् श्मश्रुनवनीतवत्।।१४२।।

अर्थ—परिग्रह का परिमाण कर लेने से यह जीव जय-कुमार आदि के समान पूजनीय होता है और लोभ से आकुल प्राणी श्मश्रुनवनीत प्राणी के समान निन्दनीय होता है।।१४२।।

वैराग्यं कुरु

भोगेनापि विना रागी कर्म बध्नाति केवलम्।
वीतरागी पुनर्भोगं भुञ्जानोऽपि विमुञ्चति।।१४३।।

अर्थ—रागी मनुष्य भोग के बिना भी मात्र कर्म को बांधता है और राग रहित मनुष्य भोग को भोगता हुआ भी कर्म को छोड़ता है। भावार्थ–रागी मनुष्य की क्रिया मात्र बन्ध का कारण है परन्तु रागरहित मनुष्य की क्रिया निर्जरा का कारण है।।१४३।।

यस्य चेतसि वामाङ्गी वर्तते दुःखदायनी।
तस्य मुक्तिः पदं धत्ते नच स्वप्नेऽपि जारवत्।।१४४।।

अर्थ—जिस मनुष्य के चित्त में दु:ख देने वाली स्त्री विद्यमान है उस के चित्त में मुक्ति स्वप्न में भी जार के समान पग नहीं रखती। भावार्थ–जिसके पास स्त्री विद्यमान रहती है उसके पास जैसे जार पुरुष पग नहीं रखता उसी प्रकार जिसके मन में एक स्त्री विद्यमान है उसके पास मुक्ति रूपी स्त्री स्वप्न में भी नहीं जाती।।१४४।।

चक्रवर्त्यादिलक्ष्मीं हि वीतरागी विहाय वै।
जिनदीक्षां समादत्ते तृणं रागी न मुञ्चति।।१४५।।

अर्थ—वीतरागी मनुष्य निश्चय से चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण कर लेता है परन्तु रागी मनुष्य तृण भी नहीं छोड़ता।।१४५।।

वैराग्यत्वमनासाद्य दीक्षादानं करोति यः।
तस्य जन्म वृथा हि स्यादजाकण्ठे स्तनाविव।।१४६।।

अर्थ—जो वैराग्य भाव को प्राप्त किये बिना दीक्षाग्रहण करता है उसका जन्म बकरी के कण्ठ में लटकते हुए स्तनों के समान व्यर्थ है।।१४६।।

वैराग्यसारं मुनिवृन्दध्येयं मुक्त्यङ्गनादानविधौ समर्थम्।
पापारिवृक्षस्य महाकुठारं सौख्याकरं त्वं भज सर्वकालम्।।१४७।।

अर्थ—जो मुनियों के समूह के द्वारा ध्यान करने योग्य है, मुक्ति रूपी स्त्री को प्रदान करने में समर्थ है, पाप शत्रुरूप वृक्ष को काटने के लिये महाकुठार है तथा सुखों की खान है ऐसे श्रेष्ठ वैराग्य को तूं सदा के लिये धारण कर।।१४७।।

गुणिसङ्गं कुरु

गुणिनां सङ्गमं प्राप्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
गुणी निर्गुणसंगसर्गात् क्षयं गच्छति काकवत्।।१४८।।

अर्थ—गुणी मनुष्यों का समागम पाकर निर्गुण भी गुणी हो जाता है और निर्गुण मनुष्यों के संसर्ग से गुणी मनुष्य भी काक के समान क्षय को प्राप्त होता है।।१४८।।

साधुसङ्गमनासाद्य यो ना मुक्त्यालयं व्रजेत्।
स चान्धः प्रस्खलन्मार्गे कथं मेरुं समारुहेत्।।१४९।।

अर्थ—जो मनुष्य साधुजनों की संगति को प्राप्त किये बिना मोक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को जाना चाहता है वह अच्छे मार्ग में ही लड़ खड़ाता हुआ मेरु पर कैसे चढ़ सकता है?॥१४९॥

विषानलमहासर्पव्याघ्रसङ्गकृतो वरम्।
न च दुर्जनसंसर्गाज् जीवितव्यं धनादिकम्॥१५०॥

अर्थ–विष अग्नि महासर्प और व्याघ्र का संग करना अच्छा है परन्तु दुर्जन के संसर्ग से जीवित रहना तथा धन आदि प्राप्त करना अच्छा नहीं है?॥१५०॥

चौरसंसर्गतो यद्वद् वधबन्धादिकं श्रयेत्।
तद्वन्नीचप्रसङ्गेन पापक्लेशवधादिकम्॥१५१॥

अर्थ–जिस प्रकार चोर के संसर्ग से मनुष्य बध बन्धन आदि को प्राप्त होता है उसी प्रकार नीच के संसर्ग से यह जीव पाप क्लेश तथा वध आदि को प्राप्त होता है॥१५१॥

पापं लुम्पति धर्मशास्त्रचरणे धत्ते मतिं निश्चलां
वैराग्यं च करोति रागविरतिं सर्वेन्द्रियाणां जयम्।
शोकक्लेशभयादिदुःखविजयं संसारपार च यो
भ्रातस्त्वं कुरुतात् सदैव शुभदं सङ्गं बुधैः सद्व्रतैः॥१५२॥

अर्थ–जो पाप को लुप्त करता है, धर्मशास्त्रानुसार आचरण करने में बुद्धि को स्थिर करता है, वैराग्य करता है राग से विरक्ति, समस्त इन्द्रियों पर विजय जीत, शोक क्लेश भय आदि दुःखों पर विजय तथा संसार को पार करता है। हे भाई! तू सदाचारी विद्वानों के उस कल्याणकारी समागम को सदा कर॥१५२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनपूजां कुरु

गृहव्यापारजं पापं हन्ति पूजा जिनस्य वै।
द्रव्यार्जनेन जातं च पुण्य सजायते तया।।१५३।।

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गृह व्यापार से उत्पन्न तथा धनार्जन से उत्पन्न पाप को नष्ट कर देती है तथा उससे पुण्य उत्पन्न होता है।।१५३।।

जिनपूजां न यः कुर्यात् समर्थोऽपि गृही कुधीः।
पक्षिगृहसमं ज्ञेयं तस्य जन्म निरर्थकम्।।१५४।।

अर्थ–जो दुर्बुद्धि गृहस्थ समर्थ होकर भी जिन पूजा को नहीं करता है पक्षी के घोंसले के समान उसका जन्म निरर्थक जानना चाहिए।।१५४।।

कालत्रयेऽपि यः पूजां करोति जिननायके।
तीर्थनाथस्य भूतिं स भुक्त्वा मुक्त्यङ्गनां व्रजेत्।।१५५।।

अर्थ–जो जिनेन्द्र भगवान की तीनों कालों में पूजा करता है वह तीर्थंकर की विभूति का उपयोग कर मुक्ति रूप अङ्गना को प्राप्त होता है।।१५५।।

पूजां बिना न पूर्येत भोगसौख्यादिकं सदा।
तस्मात्पूजा जिनेन्द्राणां कर्तव्या मुक्तिहेतवे।।१५६।।

अर्थ–पूजा के बिना भोग तथा सुख आदि की पूर्ति नहीं होती इसलिये यदि भोग ही प्राप्त करना चाहते हो तो जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना चाहिये।।१५६।।

स्वर्गश्रीगृहसारसौख्यजनिकां श्वभ्रालयेष्वर्गलां
पापारिक्षयकारिकां सुविमलां मुक्त्यङ्गनादूतिकाम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीतीर्थेश्वरसौख्यदानकुशलां श्रीधर्मसंपादिकां
भ्रातस्त्वंकुरु वीतरागचरणे पूजां गुणोत्यादिकाम्।।१५७।।

अर्थ–जो स्वर्ग लक्ष्मी के घर के श्रेष्ठ सुखों को उत्पन्न करने वाली है, नरक रूप घर का आगल है, पापरूप शत्रुओं का क्षय करने वाली है अत्यन्त निर्मल है, मुक्ति रूपी स्त्री की दूती हैं, तीर्थंकर भगवान् के सुख देने में कुशल है श्रीधर्म को उत्पन्न करने वाली है तथा गुणों की उत्पादक है ऐसी वीतराग भगवान् के चरणों की पूजा को हे भाई। तूं निरन्तर कर।।१५७।।

पात्रदानं कुरु

स्तोकं दानं सुपात्राय दत्तं भूरिगुणं भवेत्।
बटबीजं यथा क्षेत्रे तस्माद् देयं विवेकिभिः।।१५८।।

अर्थ–योग्य क्षेत्र में बोये हुए बटबीज के समान सुपात्र के लिये दिया हुआ अल्पदान भी बहुत लाभ दायक होता है इसलिये विवेकी जनों को पात्रदान देना चाहिए।।१५८।।

दृष्टिहीनोऽपि वारैकं पात्रदानं करोति यः।
भोगभूमौ समुत्पद्य सोऽपि याति सुरालयम्।।१५९।।

अर्थ–जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से रहित होने पर भी एक बार पात्र दान करता है वह भी भोग भूमि में उत्पन्न होकर स्वर्ग जाता है।।१५९।।

पात्रदानेन सद्दृष्टिः स्वर्ग गत्वापि तत्सुखम्।
चिरं भुक्त्वा सुराज्यं च पश्चाद् गच्छति निर्वृतिम्।।१६०।।

अर्थ–सम्यग्दृष्टि मनुष्य पात्र दान के द्वारा स्वर्ग जाकर, तथा चिर काल तक वहाँ के सुख भोग कर उत्तम राज्य को प्राप्त होता है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् निर्वाण को प्राप्त होता है।।१६०।।

भोगभूमौ समुत्पन्ना तिर्यञ्चोऽपि जिनैर्मताः।
पात्रादानानुमोदेन तस्माद्देयं सुभावतः।।१६१।।

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि पात्र दान की अनुमोदना करने से तिर्यञ्च भी भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं इसलिये अच्छे भावों से दान देना चाहिये।।१६१।।

अतुलगुणनिधानं स्वर्गमोक्षैकद्वारं
सकलसुखसमुद्रं पापवृक्षानलं वै।
स्वपरगुणनिदानं सर्वसाधूपकारं
कुरु मुनिजनदानं त्वं सदा मुक्तिहेतुम्।।१६२।।

अर्थ–जो अनुपम गुणों का भण्डार है, स्वर्ग और मोक्ष का एक द्वार है, समस्त सुखों का सागर है, पाप रूपी वृक्ष को जलाने के लिये अग्नि है, निज और पर, दाता और पात्र के गुणों का कारण है, सब साधुओं का उपकार करने वाला है तथा मुक्ति का हेतु है ऐसा पात्र दान तूं सदा कर।।१६२।।

कुपात्रदानं त्यज

अपात्रदानजं दोषं वक्तुं [१]शक्नोति को बुधः।
दृषन्नौसदृशं ज्ञेयं तदारूढो निमज्जति।।१६३।।

अर्थ–अपात्रदान से उत्पन्न होने वाले दोष को कहने के लिये कौन विद्वान् समर्थ है? अपात्रदान को पत्थर की नाव के समान जानना चाहिये। जो उस पर बैठता है वह नियम से डूबता है।।१६३।।

१. शक्तो न सद्बुधः इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वातिनक्षत्रजं नीरं शुक्तिकायां च मौक्तिकम्।
विष सर्पमुखे यद्वद् दानं तद्वद् बुधैः स्मृतम्।।१६४।।

अर्थ—जिस प्रकार स्वातिनक्षत्र में उत्पन्न पानी यदि सीप में जाता है तो मोती बन जाता है और सांप के मुख में जाता है तो विष हो जाता है उसी प्रकार दान भी विद्वानों के द्वारा माना गया है। भावार्थ—यदि दान सुपात्र में जाता है तो उत्तम फल देता है और अपात्र या कुपात्र में जाता है तो बुरा फल देता है।।१६४।।

अन्धकूपे वरं क्षिप्तं द्रव्यं निर्णाशहेतवे।
न स्यात्कुदानमार्गेण यतो दुस्तरपापदम्।।१६५।।

अर्थ—नष्ट करने के उद्देश्य से द्रव्य को अन्ध कूप में डाल देना अच्छा है किन्तु कुदान के मार्ग से उसे नष्ट करना अच्छा नहीं है क्योंकि कुदान बहुत भारी पाप को देने वाला है।।१६५।।

मेघनीरं यथाभूमि मिक्षुनिम्बादिकं भवेत्।
प्राप्य दानं तथा ज्ञेयं पात्रापात्रेषु योजितम्।।१६६।।

अर्थ—जिस प्रकार मेघ का जल भूमि के अनुसार ईख तथा नीम आदिक पाकर तद्रूप होता है उसी प्रकार पात्र तथा अपात्र में दिया हुआ दान भी जानना चाहिये। भावार्थ—पात्र के अनुसार दान के फल में विशेषता होती है।।१६६।।

गो हेमाङ्गज वाजिभूमिमहिलादासीतिलस्यन्दनम्।
सद्गेहप्रतिबद्धमत्र दशधा दानं शठैः कीर्तितम्।।१६७।।

अर्थ—इस लोक में अविवेकीजनों ने गो, सुवर्ण, पुत्र, अश्व, भूमि, स्त्री, दासी, तिल, रथ और घर के भेद से दश प्रकार का दान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा है परन्तु उन दानों को देने वाला और लेने वाला दोनों ही आगे चलकर हिंसादि पापों की वृद्धि होने से कुगति को प्राप्त होता है। इसलिये हे भाई विद्वानों के द्वारा निन्दित और कलङ्क का स्थान भूत वह कुदान तूं सदा के लिये छोड़॥१६७॥

तद्दाता कुगतिं व्रजेच्च पुरतो हिंसादिसंवर्द्धनात्
तन्नेतापि च त्वं सदा त्यज बुधैर्निन्द्यं कलङ्कास्पदम्
अङ्ग सुपात्रदानेन जिनेन्द्रादिपदं भजेत्।
श्रीषेणानृपवत् किन्तु कुदानात्कुगतिं व्रजेत्॥१६८॥

अर्थ–यह जींव सुपात्र दान देने से राजा श्रीषेण के समान तीर्थंकर आदि के पद को प्राप्त होता है परन्तु कुपात्रदान से कुंगति को प्राप्त होता है॥१६८॥

जिनबिम्बनिर्माणं कुरु

अङ्गुष्ठमात्रं जिनदेवबिम्बं करोति यो नित्यसमर्च्चनीयम्
अनेकजीवाजनपुण्यहेतुं महत्सुपुण्यं लभते स नित्यम्॥१६९॥

अर्थ–जो मनुष्य नित्य ही पूजा करने के योग्य तथा अनेक जीवों के द्वारा अर्जित किये जाने वाले पुण्य के कारणभूत अङ्गुष्ठ बराबर जिनेन्द्रप्रतिमा को बनाता है वह नित्य ही बहुत भारी पुण्य को प्राप्त होता है॥१६९॥

श्रीजिनेन्द्रस्य सद्बिम्बं नास्ति यस्मिन् गृहे बुधैः।
पक्षिगृहसमं तद्धि पापदं कथितं सदा॥१७०॥

अर्थ–जिस घर में जिनेन्द्रदेव का समीचीन बिम्ब नहीं है उसे विद्वानों ने सदा पक्षिगृह घोंसला के समान पाप दायक कहा है॥१७०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनबिम्बप्रतिष्ठां कुरु

श्रीजिनेश्वरबिम्बस्य यः प्रतिष्ठां करोति सः।
तीर्थराजस्य संभूति लब्ध्वा मुक्तिवरो नरः।।१७१।।

अर्थ—जो मनुष्य जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है वह भी तीर्थंकर की विभूति को प्राप्त कर मुक्ति का वर होता है सिद्धपरमेष्ठी का पद प्राप्त करता है।।१७१।।

स संघाधिपति र्ज्ञेयो यः प्रतिष्ठाकरो नरः।
न स्यादन्येन केनापि यतो धर्मप्रवर्द्धनम्।।१७२।।

अर्थ—जो प्रतिष्ठा को करने वाला है उसे संघाधिपति (संघवद्-ईि) जानना चाहिये क्योंकि धर्म की वृद्धि अन्य किसी के द्वारा नहीं होती।।१७२।।

सर्वजीवोपकारित्वात् सद्धर्माकरवर्धनात्।
न प्रतिष्ठासमं पुण्यं विद्यते गृहिणां क्वचित्।।१७३।।

अर्थ—समस्त जीवों का उपकारी होने तथा समीचीन धर्म की खान की वृद्धि का कारण होने से गृहस्थ के लिये प्रतिष्ठा के समान और दूसरा पुण्य नहीं है।।१७३।।

चैत्यालयं निर्मापय

चैत्यालयं यः कुरुते जिनस्य विसंख्यजीवार्जनपुण्यहेतुम्।
न शक्यते तस्य फलं वचोभि र्वक्तुं बुधै धर्मकरं गुणाढ्यम् ।।१७४।।

अर्थ—जो मनुष्य, असंख्यजीवों के द्वारा अर्जनीय पुण्य के कारणभूत चैत्यालय को करता है बनवाता है, धर्म को करने वाला तथा अनेकगुणों से युक्त उसका फल विद्वानों के द्वारा वचनों से नहीं कहा जा सकता।।१७४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केचित्पुण्यमुपार्जयन्ति गुणिनः पूजादिभिः प्रत्यहं
केचित् संस्तुवते परेऽपिच बुधाः पश्यन्ति वा शंसितान्
श्रीचन्द्रोपकदीपधूपकलशान् भृङ्गारघण्टादिकान्
दत्वा तत्र मुनीश्वराश्रयवरः स्याद्यत्र चैत्यालयः।।१७५।।

अर्थ–जहाँ चैत्यालय जिनमन्दिर होता है वहाँ कितने ही गुणवान् मनुष्य प्रतिदिन पूजा आदि के द्वारा पुण्य उपार्जन करते हैं, कितने ही स्तुति करते हैं और कितने ही ज्ञानार्जन उत्तम चंदोवा, दीप, धूप, कलश, झारी तथा घण्टा आदि चढ़ा कर दर्शन करते हैं। इसके सिवाय जहाँ चैत्यालय होता है वहाँ मुनिराजों का भी श्रेष्ठ आश्रय रहता है बड़े बड़े मुनिराज वहाँ ठहरते हैं।।१७५।।

उपकरणदानं कुरु

चन्द्रोपकं जिनेन्द्रस्य दत्ते यो भक्तितत्परः।
एकच्छत्रं हि सद्राज्यं लब्ध्वा स निर्वृत्ति व्रजेत्।।१७६।।

अर्थ–जो मनुष्य भक्ति में तत्पर होता हुआ श्रीजिनेन्द्र देव के लिये चंदोवा देता है वह निश्चय से एक छत्र राज्य प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त होता है।।१७६।।

घण्टा श्रीजिनदेवस्य दत्ते यः पुण्यहेतवे।
घण्टादिसहितं यानं प्राप्य मुक्तिवरो भवेत्।।१७७।।

अर्थ–जो मनुष्य पुण्य के हेतु श्री जिनेन्द्र देव के लिये घण्टा देता है वह घण्टा आदि से सहित विमान को प्राप्त कर मुक्ति का वर होता है मुक्त होता है।।१७७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानदानं विधेहि

यो ज्ञानदानं कुरुते मुनीनां स देवलोके हि सुख प्रभुज्य।
राज्यं च सत्केवलबोधभूतिं लब्ध्वा स्वयं मुक्तिपदं लभेत।।१७८।।

अर्थ–जो मनुष्य मुनियों के लिये ज्ञानदान करता है शास्त्र आदि समर्पित करता है वह स्वर्गलोक में सुख भोग कर राज्य तथा उत्तम केवल ज्ञान की विभूति को प्राप्त होता हुआ स्वयं मुक्ति पद को प्राप्त होता है।।१७८।।

औषधदानं कुरु

औषध यो मुनीनां स दत्ते पुण्यकरं बुधः।
देवलोके सुखं भुक्त्वा कर्मरोगादिकं क्षिपेत्।।१७९।।

अर्थ–जो विद्वान् मुनियों के लिये पुण्यकारी पवित्र औषध देता है वह देवलोक में सुख भोग कर कर्म रूपी रोगादिक को नष्ट करता है।।१७९।।

अभयदानं देहि

सर्वजीवेषु यो दत्ते अभयं सत्वसौख्यदम्।
स संसारसुखं प्राप्य स्थान गच्छति निर्भयम्।।१८०।।

अर्थ–जो प्राणि सब जीवों के लिये सुखदायक अभय दान देता है वह संसार का सुख प्राप्त कर निर्भय स्थान मोक्ष को प्राप्त होता है।।१८०।।

धनसदुपयोगं कुरु

किं जीवितेन कृपणस्य धनेन लोके
पूजादिदानरहितस्य च वर्द्धकस्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापस्य तस्य पुरतो बहुरोगशोक

क्लेशादिदुःखसहिता कुगतिर्ध्रुवं स्यात्।।१८१।।

अर्थ—जो पूजा आदि विषयक दान से रहित होता हुआ मात्र धन की वृद्धि करने में लगा हुआ है ऐसे कृपण मनुष्य के जीवन तथा धन से लोक में क्या कार्य होने वाला है? आगे चलकर तो उस पापी मनुष्य की बहुत रोग शोक तथा क्लेश आदि के दुःखों से सहित कुगति नियम से होने वाली है।।१८१।।

वरंदरिद्रं न च दानहीनं धनं महामोहकरं दुरन्तम्।

पापस्य बीजं नरकस्य हेतुर्दुःखाकरं दुर्गतिदानदक्षम।।१८२।।

अर्थ—दरिद्री रहना अच्छा है परन्तु दान रहित धन का होना अच्छा नहीं है क्योंकि वह महामोह को करने वाला है, दुष्परिणाम से सहित है, पाप का बीज है, नरक का हेतु है, दुःखों की खान है तथा दुर्गति के देने में समर्थ है।।१८२।।

द्रव्यं यैश्च धनं सुधर्मकरणे दत्तं जिनार्च्चादिके।

धन्यास्ते परलोकसाधनपरा वन्द्या जनैर्भूतले।।१८३।।

अर्थ—श्रीतीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा के बनवाने में मन्दिरों के जीर्णोद्धार में, शास्त्रों के लिखाने में, मुनिजनों के आहारादि दान में, प्रतिष्ठा आदि में तथा जिन पूजा आदि सुधर्म के करने में जिन्होंने धन दिया है परलोग के साधन करने में तत्पर वे धन्य पुरुष पृथिवीतल पर मनुष्यों द्वारा वन्दनीय हैं।।१८३।।

भावं कुरु

भेकः स्वर्गेऽमरो जातः पूजाभावाज्जिनस्य यः।

चैत्यचैत्यालयं कुर्यात् किं फलं तस्य वेद्मि न।।१८४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जिन पूजा के भाव से मेढक स्वर्ग में देव हो गया, फिर भी मनुष्य जिन प्रतिमा और जिन मन्दिर को बनवाता है उसे क्या फल प्राप्त होगा यह मैं नहीं जानता॥१८४॥

तपः पूजासुदानानि भावनासहितानिवै।
मोक्षवृक्षस्य बीजानि नान्यथा सन्ति मुक्तये॥१८५॥

अर्थ–निश्चय से तप पूजा और सुदान, भावना से सहित होने पर ही मोक्षरूपी वृक्ष के बीज-कारण होते हैं अन्यथा वे मोक्ष के लिये नहीं हैं।

भावार्थ- भाव रहित तपश्चरणादि से मोक्ष प्राप्त नहीं होता॥१८५॥

भावहीनस्य पूजादि तपोदानजपादिकम्।
व्यर्थं दीक्षादिकं च स्यादजाकण्ठे स्तना विव॥१८६॥

अर्थ–भाव से रहित मनुष्य के पूजा आदिक तप दान जप आदिक और दीक्षा आदिक कार्य बकरी के गले में स्थित स्तनों के समान व्यर्थ है॥१८६॥

भावनासहितः प्राणी चरणज्ञानविच्युतः।
स्वर्गादिकं सुख प्राप्य भवेन्मुक्तिस्वयंवरः॥१८७॥

अर्थ–भावना से सहित प्राणी यदि कदाचित् चारित्र और ज्ञान से च्युता भी हो जाता है तो वह स्वर्गादिक के सुख को प्राप्त कर मुक्ति का स्वयंवर होता है। **भावार्थ**- श्रद्धावन्त जीव, ज्ञान और चारित्र से भ्रष्ट होने पर पुन; मार्ग पर आ जाता है अतः वह मुक्ति का पात्र होता है परन्तु श्रद्धारहित जीव का कुछ ठिकाना नहीं रहता॥१८७॥

भावे दानं व्रतं पुण्यं पापं धर्मः प्रकीर्तितः।
तस्माद् भावं शुभं कुर्यात् किं वृथा देहदण्डनैः॥१८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–दान, व्रत, पुण्य, पाप, और धर्म भाव के ऊपर निर्भर कहे गये हैं इसलिये शुभ भाव करना चाहिये। शुभ भाव के बिना व्यर्थ शरीर को दण्डित करने तपश्चरणादि का क्लेश उठाने से क्या होने वाला है?॥१८८॥

संसाराम्बुधितारिकां सुखकरां मुक्त्यङ्गनाधाविकां।
स्वर्गद्वारप्रवेशमार्गकुशलां पापारिनाशंकराम्।
सद्धर्मामृतवापिकां सुविमलां रत्नत्रयोत्पादिकां।
भ्रातस्त्वं कुरु भावनां सुविमलां श्रीधर्मकल्पद्रुपमें।।१८९।।

अर्थ–हे भाई! तू अतिशय निर्मल धर्म रूप कल्पवृक्ष के विषय में उस भावना को कर जो संसार रूपी समुद्र से तारने वाली है, स्वर्गपुरी में प्रवेश कराने में कुशल है, पापरूप शत्रुओं का नाश करने वाली है, सद्धर्मरूपी अमृत की वापिका है, अतिशय निर्मल है और रत्नत्रय को उत्पन्न करने वाली है॥१८९॥

रात्रि भोजनं त्यज

दंशाकीटपतङ्गादिजीवराशिप्रभक्षणात्।
आमिषाशिसमो ज्ञेयो रात्रिभोजनलोलुपः।।१९०।।

अर्थ–रात्रि भोजन का लम्पट मनुष्य डांस कीड़ा तथा पङ्खी आदि जीवराशी के खाने से मांसभोजी के समान जानना चाहिये॥१९०॥

कुष्ठापित्त प्रकोपादिसर्वरोगकदम्बकम्।
इहामुत्र कुयोनि च लभते रात्रिभोजनात्।।१९१।।

अर्थ–यह मनुष्य रात्रिभोजन से इस लोक में कुष्ठ तथा पित्त के प्रकोप आदि समस्त रोगों के समूह को और पर लोक में कुयोनि-नरकादि-गतियों को प्राप्त होता है॥१९१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशुरेव स विज्ञेयो भुङ्क्ते रात्रौ हिं यो नरः।
अन्तरं न हि तस्यान्यदष्टप्रहरभक्षणात्।।१९२।।

अर्थ—जो मनुष्य रात्रि में खाता है उसे निश्चय से पशु ही जानना चाहिये क्योंकि आठों पहर खाते रहने से उसमें अन्य कुछ अन्तर नहीं है॥१९२॥

रात्रौ योग्यं न नीरं स्यात् पातुं जीवाद्यदर्शनात्।
कथं च भोजनंभक्ष्यं पत्रपूगीफलादिकम्।।१९३।।

अर्थ—रात्रि में जीव आदि के न दिखने से पानी पीना भी योग्य नहीं है फिर पान सुपारी तथा फल आदि का भोजन भक्ष्य कैसे हो सकता है?॥१९३॥

ये रात्रौ सर्वमाहारं वर्जयन्ति बुधोत्तमाः।
तेषामर्धोपवासस्य फलमुक्तं जिनेश्वरैः।।१९४।।

अर्थ—जो श्रेष्ठ विद्वान् रात्रि में सब प्रकार का आहार छोड़ देते हैं उन्हें आधे उपवास का फल भगवान् ने कहा है॥१९४॥

अन्धाः कुब्जकवामनातिविकला अल्पायुषः प्राणिनः
शोकक्लेशविषादिदुःखबहुलाः कुष्ठादिरोगान्विताः।
दारिद्र्योपहतां अतीवचपला मन्दा नराः स्यु र्ध्रुवं
रात्रिभोजनलम्पटा परभवे तिर्यक्षुश्वभ्रादिषु।।१९५।।

अर्थ—रात्रि भोजन के लम्पट पुरुष निश्चित ही अन्धे कुबड़े बौने विकनाङ्ग अल्पायु शोक क्लेश तथा विष आदि के दुःख से परिपूर्ण कुष्ठ आदि रोगों से सहित दरिद्रता से पीड़ित अत्यन्त चपल और मूर्ख होते हैं तथा परभव में तिर्यञ्चों तथा नरक आदि में उत्पन्न होते हैं॥१९५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गेहं त्यज

नारीशृङ्खलसंबद्धः पुत्रादिपाशवेष्टितः।
मोहान्धः सञ्चरन् गेहे श्वभ्रकूपे पतिष्यति।।१९६।।

अर्थ–स्त्रीरूपी सांकल से बन्धा, पुत्रादि रूप फांसी से वेष्टित तथा मोह से अन्धा गृहवासी मनुष्य नरकरूप कूप में पड़ेगा।।१९६।।

नित्यं करोति पापं हि पुण्यं कर्तुं प्रभुर्न यः।
कामान्धस्तस्य किं न स्यान्मज्जतं दुःखसागरे।।१९७।।

अर्थ–जो पाप तो नित्य ही करता है और पुण्य करने के लिये समर्थ नहीं है तथा काम से अन्धा रहता है उसका दुःखसागर में डूबना क्यों नहीं होगा? अवश्य होगा।।१९७।।

वरं पातो महावह्नौ न च मोहाग्निदुर्गमे।
भवैकं हि दहेद् वह्निरनन्तभवदुःखदे।।१९८।।

अर्थ–प्रचण्ड अग्नि में पड़ जाना अच्छा है किन्तु मोह रूपी अग्नि से दुर्गम गृह में रहना अच्छा नहीं है क्योंकि अग्नि एक ही भव में जलाती है और गृहवास अनन्तभवों में दुःखदायक है।।१९८।।

येषां न पूजा जिनपुङ्गवस्य न दानशीलं न तपो जपश्च।
न धर्मसारं गुरुसेवनं च गेहे यथैते वृषभाश्चरन्ति।।१९९।।

अर्थ–जिनके गृहों में न जिनेन्द्र-देव की पूजा होती है, न दान देने की प्रवृत्ति है, न जप होता है न तप होता है और न धर्म की सारभूत गुरु सेवा होती है, वे घरों में बैलों के समान चरते हैं।।१९९।।

दुःखाकरं दुर्गतिदानदक्षं पापारिगेहं गुणधर्मशत्रुम्।
मोहादिपाशं परमार्थशून्यमाशाकरं त्वं त्यज भो नु गेहम्।।२००।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो दु:खों की खान है, दुर्गति देने में समर्थ है, पापरूपी शत्रु का घर है, गुण तथा धर्म का शत्रु है, मोह आदि के पाश से सहित है, परमार्थ से शून्य है तथा आशा तृष्णा को उत्पन्न करने वाला है। हे भाई! उस घर को तू छोड़॥२००॥

देहे वैराग्यं कुरु

सप्तधातुमये देहे रोगप्रचयपूरिते।
को ज्ञानी रमतेऽसारे दुर्गन्धामेध्यमन्दिरे।।२०१।।

अर्थ–सात धातुओं से तन्मय, रोगों के समूह से भरे हुए तथा दुर्गन्धित अपवित्र वस्तुओं के घर स्वरूप नि:सार शरीर में कौन ज्ञानी मनुष्य रमता है? अर्थात् कोई नहीं॥२०१॥

अनेकवस्त्रताम्बूलैरन्नपानैश्च पोषितम्।
जीवेन सह नो याति शरीरं दुर्जनादिवत्।।२०२।।

अर्थ–अनेक वस्त्र, पान तथा अन्न पान के द्वारा पुष्ट किया हुआ शरीर दुर्जनादि के समान जीव के साथ नहीं जाता है॥२०२॥

तैरेव सफलं चक्रे: यैः शरीरं कदर्थितम्।
विरज्य कामभोगेषु तपश्चारित्रसिद्धये।।२०३।।

अर्थ–जिन्होंने काम भोगों में वैराग्य धारण कर तप और चारित्र की सिद्धि के लिये शरीर को पीड़ित किया है कृश किया है उन्होंने उसे सफल किया है॥२०३॥

देहं पुष्णाति यो मूढो नित्यं तस्य प्रयच्छति।
अत्रामुत्र घनं रोगं दुर्गतिं तस्य सर्प्पवत्।।२०४।।

अर्थ–जो मूर्ख मनुष्य निरन्तर शरीर को पुष्ट करता है उस मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिये यह शरीर सर्प के समान इस भव में अत्यधिक रोग और पर भव में दुर्गति को प्रदान करता है। भावार्थ–जिस प्रकार सर्प दूध पिलाने पर भी अपने विष द्वारा मनुष्य को कष्ट दायक होता है उसी प्रकार यह शरीर भी, भोगोपभोग की सामग्री के द्वारा पुष्ट किये जाने पर भी कष्ट दायक होता है।।२०४।।

शुक्रश्रोणितसंभवेऽशुचिगृहे देहे कृतान्तास्पदे
रोगक्लेशविषाददुःखजनके पापाकरे दुःखदे।
कामक्रोधक्षुधादिवह्नितपिते रागं विधत्ते सुधीः
को धर्मं प्रविहाय सौख्यजनकं दुखाय पापाय च।।२०५।।

अर्थ–रजवीर्य से जिसकी उत्पत्ति होती है, जो अपवित्र वस्तुओं का घर है, यमराज का स्थान है, रोग क्लेश विषाद और दुःखों का जनक है पाप की खान है, दुःख दायक है, तथा काम क्रोध और क्षुधारूप अग्नि के द्वारा तपाया गया है ऐसे शरीर में सुखदायक धर्म को छोड़कर दुःख और पाप की प्राप्ति के लिये कौन बुद्धिमान मनुष्य राग करता है? अर्थात् कोई नहीं।।२०५।।

संसारवैराग्यं कुरु

तिलोपमं सुखं प्राप्य दुःखं मेरुसमं भजेत्।
मूढः संसारकान्तारे दुःखव्याघ्रादिसंकुले।।२०६।।

अर्थ–दुःख रूपी व्याघ्र आदि जन्तुओं से भरे हुए संसार रूपी वन में मूर्ख प्राणी तिल के बराबर-अल्प सुख को पा कर मेरु पर्वत के बराबर भारी दुःख को प्राप्त होता है।।२०६।।

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सुखे संसारसंभवे।
रतिं कृत्वा वृथा मूढो दुःखं भजति दुःसहम्।।२०७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ज्ञानी प्राणी दुर्लभ मनुष्य पर्याय को पाकर सांसारिक सुख में प्रीति करता हुआ व्यर्थ हो दु सह दुःख को भोगता है॥२०७॥

संसारसागरे घोरे दुःसहे विषमे चले।
धर्मनावं समारुह्य गच्छतांपरमां गतिम्॥२०८॥

अर्थ—हे भाई! भयंकर, दुःसह विषम और चञ्चल लहराते हुए संसार सागर में तूं धर्म रूपी नाव पर चढ़ कर श्रेष्ठ गति को प्राप्त कर॥२०८॥

भवे मानयते सौख्यं मूढ इन्द्रियगोचरम्।
दुःखं तदेव जानाति ज्ञानी पापारिवर्द्धनात्॥२०९॥

अर्थ—संसार में अज्ञानी जीव उसी इन्द्रियों से इस विषय को सुख मानता है ज्ञानी जीव उसी इन्द्रियों के विषय को पापरूप शत्रु की वृद्धि करने से दुःख मानता है॥२०९॥

रागद्वेषमहाजलेऽतिविषमे दुःखादिरन्ध्रान्विते
शोकक्लेशभयादिमीनबहुले व्याध्यादिभङ्गाकुले
मृत्युत्पत्तिभयानकेऽतिचपले संसारघोरार्णवे
प्राणी मज्जति धर्मनौविरहितो मोहारिबद्धो वृथा॥२१०॥

अर्थ—जिसमें राग द्वेष रूप भारी जल भरा हुआ है, जो अत्यन्त विषम है, दुःख आदिक छिद्रों-विलों से सहित है, शोक क्लेश भय आदिक मच्छों से परिपूर्ण है, रोग आदि लहरों से व्याप्त है, जन्म मरण से भयानक है, और अत्यन्त चञ्चल है। ऐसे संसाररूपी भयंकर समुद्र में, मोहरूपी शत्रु के द्वारा बँधा हुआ यह प्राणी धर्म रूप नाव के अभाव में व्यर्थ ही डूब रहा है॥२१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगवैराग्यं कुरु

व्याघ्रचौराररिसर्प्पाग्नि तीव्ररोगविषाणि च।

एकस्मिन् ददते दुःखं भोगाः संख्यातिगे मवे।।२११।।

अर्थ–व्याघ्र, चोर, शत्रु, सर्प, अग्नि, तीव्ररोग और विष एक ही भव में दुःख देते हैं परन्तु भोग असंख्यभवों में दुःख देते हैं।।२११।।

पन्थानौ द्वौ न गम्येते पथिकेन यथा तथा।

यद्यक्षसुखमत्यक्षं सुगं न स्यात्कदाचन।।२१२।।

अर्थ–जिस प्रकार एक पथिक के द्वारा दो मार्ग नहीं चले जाते उसी प्रकार एक जीव के यदि इन्द्रिय सम्बन्धी सुख है तो अतीन्द्रिय सुख कभी नहीं हो सकता।।२१२।।

प्रार्थयन्ति न सद्भोगानिन्द्रचक्र्यादिमोचरान्।

क्वचिद् भोगान्समीहन्ते मुनयः पापवर्द्धनान्।।२१३।।

अर्थ–मुनि जब इन्द्र चक्रवर्ती आदि के प्रशस्त भोगों की भी कभी चाह नहीं रखते तब पापवर्धक भोगों की चाह तो करेंगे ही कैसे?।।२१३।।

नैव भोगं त्यजेद्यस्तु मुद्रां गृहणाति केवलम्।

तपश्च ध्यान मौनादि सर्वं तस्य वृथा श्रमः।।२१४।।

अर्थ–जो भोग तो छोड़ता नहीं है मात्र मुनिमुद्रा ग्रहण करता है उसका तप ध्यान तथा मौन आदिक सभी व्यर्थ का परिश्रम है।।२१४।।

दुरितकुरुहकन्द दुःखसंतापबीजं

नरकविषममार्गं धर्मवृक्षानलं च।

विकलकरमसारं दुःखपूर्णं त्यज त्व

मुनिजनघननिन्द्यं सर्वभोगं दुरापम्।।२१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो पाप रूपी वृक्ष का कन्द है दुःख रूप संताप का बीज है, नरक का विषम मार्ग है, धर्म रूपी वृक्ष को भस्म करने के लिये अग्नि है, विकलता को करने वाला है, दुःख पूर्वक होता है, मुनिजनों के द्वारा अत्यन्त निन्दनीय है तथा दुष्प्राप्य है ऐसे समस्त भोग को तूं छोड़।।२१५।।

धीरत्वं कुरु

वाणवृष्टिसमाकीर्णो रणे तिष्ठन्ति भूभुजः।
योषित्कटाक्षसंग्रामे न च धीरा मुनीश्वराः।।२१६।।

अर्थ–वाणवृष्टि से व्याप्त रणक्षेत्र में राजा स्थित रहते हैं परन्तु स्त्रियों के कटाक्षों के संग्राम में धीर वीर मुनिराज जभी नहीं ठहर पाते।।२१६।।

परीषह कषायादि जये शूरास्तथेन्द्रिये।
मदने कर्मसन्ताते भवन्ति न च संगरे।।२१७।।

अर्थ–परिषह तथा कषाय आदि के जीतने में और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में शूर वीर मनुष्य हैं परन्तु कर्मसन्तति को बढ़ाने वाले काम के युद्ध में कोई शूर वीर नहीं हैं।।२१७।।

हस्तिव्याघ्रादिचौराणां सन्ति शूरा विदारणे।
बहवस्ते न दृश्यन्ते ये कामारिनिपातका।।२१८।।

अर्थ–हाथी, व्याघ्र आदि हिंसकजन्तु और चोरों का घात करने में बहुत शूर हैं परन्तु जो कामरूपी शत्रु को नष्ट करने वाले हैं वे शूर दिखाई नहीं देते।।२१८।।

घोरोपसर्गसंपाते व्याघ्रादिकुजनै भ्यो कृतेः।
न त्यक्तं सत्वसाम्राज्यं यैश्च [1]तेभ्योनमोऽस्तु मे।।२१९।।

---

१. तेषामित्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—व्याघ्र आदि दुष्ट जीव तथा दुर्जनों के द्वारा किये हुए भयंकर उपसर्गों के उपस्थित होने पर जिन्होंने धैर्य का साम्राज्य नहीं छोड़ा उनके लिये मेरा नमस्कार हो।।२१९।।

धीरत्वं भज सर्वकालविषये घोरोपसर्गे सति
संसारम्बुधितारकं शुभकरं पापारिविध्वंसकम्।
मुक्तिस्त्रीगृहमग्रिमं मुनिजनैः सेव्यं सदा सौख्यपदं
संख्यातीतगुणैकगेहमसमं प्राणात्यये त्वं बुध!।।२२०।।

अर्थ—हे विद्वान्! जो संसार रूपी समुद्र से तारने वाला है, मुक्तिरूपी स्त्री का श्रेष्ठ घर है, मुनिजनों के द्वारा सदा सेवनीय है, सुखदायक है, असंख्यात गुणों का अद्वितीय घर है तथा जिसकी कोई तुलना नहीं है ऐसे धैर्य को तूं सदा भयंकर उपसर्ग होने तथा प्राणनाश का अवसर आने पर भी धारण कर।।२२०।।

शोकं त्यज

शोकं करोति यो मूढो मृतो न हि मरिष्यति।
शोभते स न चान्योत्र पुत्रदारादिसंमृते।।२२१।।

अर्थ—जो मूर्ख शोक करता है वह क्या कभी मरा नहीं है और आगे भी क्या नहीं मरेगा? पुत्र तथा स्त्री आदि की मृत्यु होने पर वह तथा अन्य प्रकार का शोक शोभा नहीं देता।।२२१।।

मृते स्वजनमात्रेऽपि यः शोकं कुरुते कुधीः।
[1]आत्मानं किं स जानाति जरामरणविच्युतम्।।२२२।।

अर्थ—आत्मीयजन की मृत्यु होने पर भी जो दुर्बुद्धि मनुष्य शोक करता है वह क्या अपनी आत्मा को जरा मरण से रहित जानता

---

१. आत्मानं तेन किं ज्ञानं जरा विमरष निच्युत, इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।।२२२।।

यस्मिन्नहनि संजात स्तदारभ्य दिनं प्रति।
नीयते यमगेहं हि प्राणी कर्मारिभिर्बलात्।।२२३।।

अर्थ–जिस दिन यह जीव उत्पन्न हुआ उसी दिन जाया से लेकर कर्म शत्रुओं के द्वारा बल पूर्वक यमराज के घर ले जाया जाता है।।२२३।।

मूढ शोकाकुलो भूत्वा धर्मपूजादिक त्यजेत्।
बुध इष्टवियोगेन संवेगाद् धर्ममाचरेत्।।२२४।।

अर्थ–मूढ पुरुष शोक से आकुल होकर पूजा आदिक धर्म को छोड़ देता है परन्तु ज्ञानी जीव, इष्टवियोग के कारण संवेग से धर्माचरण करता है।।२२४।।

कुगतिगमनमार्गं दुःखसंतापहेतु
स्वजनधनवियोगात् संभवं पापबीजम्।
विबुधसुजननिन्द्यं सौख्यकक्षानलं भो
त्यज कुरु जिनधर्मं त्वं सदा सर्वशोककम्।।२२५।।

अर्थ–परिवार तथा धनादिक के वियोग से उत्पन्न होने वाला शोक कुगति को प्राप्त कराने वाला मार्ग है, दुःख और संताप का हेतु है, विद्वानों तथा सत्पुरुषों के द्वारा निन्द्य है, तथा सुख रूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि है ऐसे समस्त शोक का हे भाई! तू त्याग कर तथा जिनधर्म को सदा के लिये धारण कर।।२२५।।

नीरस्नानं त्यज

मद्यकुम्भो यथा शुद्धो न स्याद् धौतः सरिज्जलैः।
स्नानेनापि तथा जीवो मिथ्यात्वादिमलीमसः।।२२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जिस प्रकार नदियों के जल से धोया हुआ मदिरा का घड़ा शुद्ध नहीं होता उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि से मलिन जीव भी स्नान से शुद्ध नहीं होता॥२२६॥

घृतकुम्भो यथा शुद्धो मलिनोऽपि बिना जलैः।
तथा मुनीश्वरा ज्ञेया ज्ञानचारित्रनिर्मला।।२२७।।

अर्थ–जिस प्रकार घी का घड़ा मलिन होने पर भी जल के बिना शुद्ध होता है उसी प्रकार ज्ञान और चारित्र से निर्मल मुनिराज भी जल के बिना शुद्ध जानने के योग्य हैं॥२२७॥

नवद्वारैः स्रवद्देहं दुर्गन्धामेध्यमन्दिरम्।
मानयन्ति जलैः शुद्ध पशवस्ते न मानवाः।।२२८।।

अर्थ–नौ द्वारों से झरते हुए तथा दुर्गन्ध और अपवित्र वस्तुओं के घर स्वरूप शरीर को जो जल से शुद्ध मानते हैं वे पशु हैं मनुष्य नहीं॥२२८॥

यः स्नानं कुरुते नित्य तस्य पाप बुधैः स्मृतम्।
कीटमत्स्यविनाशेन न स्यात् पुण्य हि मीनवत्।।२२९।।

अर्थ–जो नित्यस्नान करता है उसे पापबन्ध होता है ऐसा विद्वानों ने स्मरण किया है सो ठीक ही है क्योंकि मच्छ की तरह कीड़ों और मच्छों के विनाश से पुण्य नहीं होता। भावार्थ–नदी में रहने वाला बड़ा मच्छ छोटे-छोटे कीड़ों तथा मछलियों का विघात करता हुआ निरन्तर पानी में रहता है परन्तु पानी में रहने मात्र से उसके पुण्य नहीं माना ज़ाता इसी प्रकार जो मनुष्य पाप करता हुआ जल से स्नान कर अपने को शुद्ध मानता है उसे पाप ही होता है पुण्य नहीं॥२२९॥

भ्रातस्त्वं कुरु धर्मसारसलिले तीर्थे जिनेन्द्रोदिते
स्नान ज्ञानमहोदधौ च समता भिक्षासरित्संगमे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर्लीनमलस्य नाशजनक बाह्य च जीवक्षयाद्
गङ्गासागरपुष्करादिषु जनाः पापाय दुःखाय च।।२३०।।

अर्थ—जिसमें श्रेष्ठ धर्म रूप पानी भरा है, जिसमें समता और भिक्षा रूप नदियों का समागम है जो तीर्थ स्वरूप है और जिनेन्द्र देव ने जिसका कथन किया है ऐसे ज्ञान रूपी महासागर में हे भाई! तू स्नान कर। तेरा यह स्नान अन्तर्गत मल को नष्ट करने वाला होगा। संसार के अन्य पुरुष जो गङ्गासागर तथा पुष्कर आदि क्षेत्रों में स्नान करते हैं उनका वह स्नान जीवक्षय का कारण होने से पाप और दुःख का कारण है।।२३०।।

शरीरसफलं कुरु

ते नेत्रे सफले मन्ये पश्यतो ये जिन गुरुम्।
श्रुतमन्यत्र पश्येतां व्यर्थे पापप्रदे ध्रुवम्।।२३१।।

अर्थ—मैं उन्हीं नेत्रों को सफल मानता हूँ जो जिनेन्द्रदेव, गुरु और शास्त्र का दर्शन करते हैं। जो नेत्र अन्यत्र देखते हैं वे निश्चित ही व्यर्थ हैं तथा पाप के देने वाले हैं।।२३१।।

तौ कर्णौ सफलौ ज्ञेयौ पीयमानौ श्रुतामृतम्।
पापशास्त्रादि शृण्वन्तौ निःफलौ स्फुटितौ वरम्।।२३२।।

अर्थ—उन कानों को सफल जानना चाहिये जो शास्त्र रूपी अमृत का पान कर रहे हैं। जो कान पाप वर्द्धक शास्त्र आदि को सुनते हैं वे निष्फल हैं। उनका फूट जाना ही अच्छा है।।२३२।।

तां जिह्वां सफलां मन्ये या ज्ञानामृतलालसा।
दशधाधर्मोपदेशेऽसच्छास्त्रे पापदा भवेत्।।२३३।।

अर्थ—मैं उस जिह्वा को सफल मानता हूँ जो ज्ञान रूपी अमृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा दशविध धर्म के उपदेश में लालसा रखती है। जो जिह्वा मिथ्याशास्त्र में लालसा रखती है वह पाप दायक है।।२३३।।

अभ्यर्थयामि हे जिह्वे, वक्तव्यं मधुरं वचः।
हितं गुणाकरं सारं पापाढ्यं त्यज दुःखदम्।।२३४।।

अर्थ—हे जिह्वे! मैं चाहता हूँ कि तुझे मधुर, हितकारी, गुणों की खान तथा सारपूर्ण वचन बोलना चाहिये। पाप से युक्त तथा दुःख दायक वचन का तू त्याग कर।।२३४।।

तौ हस्तौ सफलौ स्यातामर्च्चयन्तौ जिनं गुरुम्।
[1]कुदेवार्चारतौ व्यर्थौ तथा हिंसाप्रवर्तकौ।।२३५।।

अर्थ—वे हाथ सफल हैं जो जिनेन्द्र देव और निर्ग्रन्थ गुरु की पूजा करते हैं। जो गुरुदेव की पूजा में रत हैं तथा हिंसा की गुरु प्रवृत्ति करने वाले हैं वे हाथ व्यर्थ हैं।।२३५।।

जिनेन्द्रे च गुरौ शास्त्रे नत[2] वै यस्य मस्तकम्।
तस्यैव सफलं मन्ये अन्यत्र नमनं वृथा।।२३६।।

अर्थ—जिसका मस्तक जिनेन्द्रदेव गुरु और शास्त्र के समक्ष नम्रीभूत होता है मैं उसी के मस्तक को सफल मानता हूँ। अन्य के समक्ष मस्तक का नम्रीभूत होना व्यर्थ है।।२३६।।

वीतरागे मुनौ शास्त्रे गच्छतश्चरणौ हि यौ।
यात्रादिकमहातीर्थे सफलौ तौ न चापरौ।।२३७।।

अर्थ—वीतरागदेव, मुनि, शास्त्र तथा महातीर्थ की यात्रादि के निमित्त गमन करने वाले मनुष्य के जो चरण हैं वे ही सफल हैं, अन्य नहीं।।२३७।।

---

१. कुदेवार्चनतो इत्यपि २. नमितं इत्यपि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदयं तदहं मन्ये यद्विवेकश्रुतान्विनम्।
तत्परं जिनधर्मे च परं प्रापप्रदं भवेत्।।२३८।।

अर्थ—मैं उस हृदय को हृदय मानता हूँ जो विवेक और श्रुत से सहित है तथा जिन धर्म में तत्पर है। अन्य हृदय पाप को देने वाला है।।२३८।।

मन्ये देहं तदेवाहं चच्चारित्रतपः क्षमम्।
परीषहसहं धीरं मतं पापकर परम्।।२३९।।

अर्थ—मैं उसी शरीर को शरीर मानता हूँ जो चारित्र तथा तप करने में समर्थ है, परीषहों को सहन करने वाला है और धीर है। अन्य शरीर पाप को करने वाला माना गया है।।२३९।।

दर्शनज्ञानवृत्तेन विना यः परमत्ति सः।
आहारं पशुरूपेण भारवाहो भविष्यति।।२४०।।

अर्थ—जो दर्शन ज्ञान और चारित्र के सिवाय अन्य आहार को खाता है वह पशु के रूप में भार वाहक होगा।।२४०।।

नेत्रे यस्य जिनस्य वीक्षणपरे पादौ हि यातं पुनः
यत्राया च करौ समर्च्चनपरौ कर्णौ च शास्त्रान्वितौ।
जिह्वा सद्गुणभाषणे च कुशाला ध्याने मनस्तत्पर
मन्ये तस्य हि मर्त्यजन्म सफल तेनैव भूर्भूषिता।।२४१।।

अर्थ—जिसके नेत्र जिनेन्द्र देव के दर्शन करने में तत्पर हैं, पैर यात्रा में जाते हैं, हाथ पूजा करने में तत्पर हैं, कान शास्त्र से सहित हैं, जिह्वा सद्गुणों के कहने में कुशल है और मन ध्यान में तत्पर है उसी के मनुष्य जन्म को मैं सफल मानता हूँ और उसी से पृथिवी विभूषित है।।२४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यौवनं सफलं कुरु

अन्ध एव वराकोऽसौ यो जिनं नैव पश्यति।
शृणोति नैव सच्छास्त्रं वधिरः पापकारकः।।२४२।।

अर्थ—जो जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन नहीं करता है वह बेचारा अन्धा ही है और जो समीचीन शास्त्र को नहीं सुनता है वह पाप का करने वाला बहरा है।।२४२।।

यौवने कुरु भी मित्र! तपो दुःसहमञ्जसा।
जिनदीक्षां समादाय मुक्तिश्रीचित्तरञ्जिकाम्।।२४३।।

अर्थ—हे मित्र! मुक्ति रूपी लक्ष्मी के चित्त को प्रसन्न करने वाली जिन दीक्षा लेकर तूँ यौवन के समय समीचीन तप कर।।२४३।।

पूजादानं तपो धर्म्मं ज्ञानं वृत्तं च शक्यते।
यौवने न च वृद्धत्वे सर्वमाचरितुं स्वयम्।।२४४।।

अर्थ—पूजा, दान, तप, धर्म, ज्ञान और चारित्र इन सबका आचरण युवावस्था में ही किया जा सकता है वृद्धावस्था में नहीं।।२४४।।

अर्थं प्राप्य न शक्यते च वत यैः कर्तुं जिनेन्द्रालयं
दानं चापि समर्थदेहमपि ये लब्ध्वा तपो न क्षमाः।
दारिद्र्योपहतास्त्यजन्ति न गृहं चाशां न मुञ्चन्ति ये
अत्रामुत्र च दुःखदुर्गतिरहो निन्दा च तेषां भवेत्।।२४५।।

अर्थ—खेद है कि जो धन पाकर जिन मन्दिर नहीं बनवा सकते तथा दान नहीं दे सकते, जो समर्थ शरीर पाकर भी तप करने में समर्थ

१. तपसि न क्षमा इति तपो न क्षमाः इति विग्रहः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हैं, दरिद्रता से पीड़ित होकर भी घर का परित्याग नहीं करते और आशा को नहीं छोड़ते उन्हें इस लोक में दुःख और परलोक में दुर्गति प्राप्त होती है। साथ ही निन्दा भी उनकी होती है॥२४५॥

कलङ्कितं वृत्तं त्यज

[१]अज्ञानाद् यत्कृतं पापं सज्ज्ञानात्तद् विमुच्यते।
ज्ञात्वा ज्ञानं कृतं पापं वज्रलेपः प्रजायते॥२४६॥

अर्थ—अज्ञान से किया गया पाप है वह तो सम्यग्ज्ञान से छूट जाता है परन्तु जान कर जो पाप किया जाता है वह वज्र का लेप हो जाता है॥२४६॥

वरं गार्हस्थ्यमेवेह न च वृत्तं कलङ्कितम्।
रागद्वेषमदोन्मादैरत्रामुत्र च दुःखदम्॥२४७॥

अर्थ—इस लोक में गृहस्थ धर्म का पालन करना ही अच्छा है परन्तु दोष पूर्ण चारित्र का धारण करना अच्छा नहीं है॥२४७॥

धर्मस्थाने निषिद्धं कार्यं त्यज

गृहव्यापाराजं पापं जिनपाश्र्वे विमुच्यते।
जिनपार्श्वे कृतं पापं कथं मूढः परित्यजेत्॥२४८॥

अर्थ—गृहव्यापार से उत्पन्न हुआ पाप जिनेन्द्र भगवान् के पास छूट जाता है परन्तु जिनेन्द्र भगवान् के पास किये गये पाप को मूर्ख जन कैसे छोड़ेगा?॥२४८॥

अङ्गुलीस्फोटनं हास्यमसत्यवचनं शुचम्।
निष्ठीवन च भुक्त्यादिकथां पादप्रसारणम्॥२४९॥

---

१. अज्ञानादिकृतं इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वार्तादिकरणं क्रोधं भक्षणं मर्मचालनम्।
शयनं वाप्यवष्टम्भं वर्जयेद्यतिसन्निधौ।।२५०।।

अर्थ—अङ्गुलियों का चटकाना, हंसना, असत्यवचन, शोक, थूंकना, भोजन आदि की कथा, पैर पसारना, गप्पकरना, क्रोध करना, किसी वस्तु को खाना, मर्म स्थानों का चलाना, सोना और किसी वस्तु के सहारे टिक कर बैठना या खड़े होना इन सब कामों को मुनियों के समीप नहीं करना चाहिये।।२५०।।

निर्माल्यं त्यज

जिनस्याग्रे धृतं येन फल तस्मिन् गृहं गते।
यो मूढस्तच्च गृह्णाति न विद्मस्तस्य का गतिः।।२५१।।

अर्थ—जिसने जिनेन्द्र भगवान् के आगे फल चढ़ाया वह अपने घर चला गया। पश्चात् उस फल को जो मूर्ख ग्रहण करता है उसकी क्या गति होती है यह हम नहीं जानते।।२५१।।

देवशास्त्रगुरूणां भो निर्माल्यं स्वीकरोति यः।
वंशच्छेदं परिप्राप्य पश्चात्स दुर्गतिं व्रजेत्।।२५२।।

अर्थ—हे मित्र! जो देव शास्त्र गुरु के निर्माल्य को स्वीकृत करता है वह वंशच्छेद को पाकर पश्चात् दुर्गति को प्राप्त होता है।।२५२।।

ढौकयेच्च फलं कश्चिद् भव्यो गृहणाति यः कुधीः।
जिनाग्रे तद्धि किं तेन स्वं ज्ञातमजरामरम्।।२५३।।

अर्थ—कोई भव्य जिनेन्द्र देव के आगे फल चढ़ाता है उसे जो मूर्ख ग्रहण करता है उसने क्या अपने धन को अजर अमर समझा है? भावार्थ—निर्माल्य को ग्रहण करने वाले का सब धन नष्ट हो जाता है।।२५३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रयं समुच्चार्य गुरुपादौ प्रपूजितौ।
पूजयतां च यो गृहणन् प्राघूर्णो दुर्गतिः स ना।।२५४।।

अर्थ–किसी ने रत्नत्रय का अच्छी का अच्छी तरह उच्चारण कर गुरु के चरणों की पूजा की। पूजा करने वालों की उस चढ़ाई हुई सामग्री को जो ग्रहण करता है वह मनुष्य दुर्गति का पाहुना होता है।।२५४।।

जिनेश्वरमुखोत्पन्नं शास्त्रं केनापि र्चितम्।
अर्चयतां हि यो गृहणन् मूकादिकुजनो भवेत्।।२५५।।

अर्थ–किसी ने जिनेन्द्र भगवान् के मुख से उत्पन्न शास्त्र की पूजा की। पूजा करने वाले मनुष्यों की सामग्री को जो ग्रहण करता है वह गूंगा आदि खोटा मनुष्य होता है।।२५५।।

देवद्रव्येषु यो वृद्धो गुरुद्रव्येषु यत्सुखम्।
तत्सुखं कुलनाशाय भूयोऽपि नरकं व्रजेत्।।२५६।।

अर्थ–देव द्रव्य रख कर जो मनुष्य वृद्धि को प्राप्त हुआ है अथवा गुरु का द्रव्य रख कर जो सुख प्राप्त होता है उसका वह वृद्धि और सुख कुल के नाश के लिये होता है तथा वह मनुष्य पश्चात् नरक को प्राप्त होता है।।२५६।।

व्रतभङ्गं त्यज

वरं प्राणपरित्यागो न च भङ्गो व्रतादिके।
गुरुदेवादिलोपेन श्वभ्रतिर्यग्गतिं भजेत्।।२५७।।

अर्थ–प्राणों का परित्याग करना अच्छा है परन्तु व्रत आदि का भङ्ग करना अच्छा नहीं है। गुरु तथा देव आदि की आज्ञा का लोप करने से यह जीव नरक तथा तिर्यंचगति को प्राप्त होता है।।२५७।।

अमेध्यभक्षणं श्रेष्ठं न तु त्यक्तस्य भक्षणम्।
वस्त्रादिक न च ग्राह्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।।२५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–अमेध्य वस्तु का भक्षण करना अच्छा है परन्तु छोड़ी वस्तु का भक्षण करना श्रेष्ठ नहीं है। कण्ठगतप्राण होने पर भी मुनियों को छोड़े हुए वस्त्र आदि ग्रहण करना योग्य नहीं है॥२५८॥

यः परित्यज्य गृह्णाति वस्तु छर्दितलोलुपः।
इहलोके च हास्यं सोऽप्यमुत्र दुर्गतिं भजेत्॥२५९॥

अर्थ–जो मनुष्य किसी वस्तु का परित्याग कर फिर से उसे ग्रहण करता है वह यानी वमन की हुई वस्तु को खाने का लोभी है। ऐसा मनुष्य इसलोक में हास्य को प्राप्त होता है और पर लोक में दुर्गति को प्राप्त होता है॥२५९॥

गुरुदेवादिशास्त्राणि साक्षीकृत्य व्रतानि यः।
धृत्वा त्यजति तान्यस्य दुःखदानि भवे भवे॥२६०॥

अर्थ–जो पुरुष गुरुदेव तथा शास्त्र आदि की साक्षी पूर्वक व्रतों को धारण कर छोड़ता है वे इसके लिये भव भव में दुःखदायक होते हैं॥२६०॥

सुरगतिगृहमार्गं ज्ञानविज्ञानहेतुं
जिनगणधरसेव्यं धर्मबीजं व्रतं त्वम्।
भज त्यज्ञ व्रतभङ्ग धीर! निन्द्यं कुसङ्गं
नरकगमनमूलं पापसंतापकारि॥२६१॥

अर्थ–जो देवगति रूप घर कर मार्ग है, ज्ञान और विज्ञान का हेतु है, जिनेन्द्रदेव क्या गणधरों के द्वारा सेवनीय है, तथा धर्म का बीज है ऐसे व्रत को तूं धारण कर और हे धीर वीर! निन्दनीय, खोटी संगति से युक्त नरकगति का मूल तथा पाप और संताप को करने वाले व्रत भङ्ग को छोड़। भावार्थ–परीषह तथा उपसर्ग के आने पर धैर्य धारण कर, तथा खोटी संगति से दूर रह। ऐसा करने से तू गृहीत व्रत की रक्षा कर सकने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में समर्थ होगा॥२६१॥

समाधिमरणं कुरु

उपसर्गे च दुर्भिक्षे वृद्धत्वे रोगपीडिते।
व्रतमादाय संन्यासे त्यज प्राणान् विमुक्तये।।२६२।।

अर्थ—हे भाई! तूं व्रत लेकर उपसर्ग, दुष्काल बुढ़ापा और रोग से पीड़ित अवस्था के होने पर मुक्ति प्राप्त करने के लिये सन्यास में प्राण परित्याग कर समाधिमरण कर॥२६२॥

धीरत्वे सति मृत्युश्च कातरत्वेऽपि चेद्भवेत्।
कातरत्वं परित्यज्य धीरत्वे मरणं कुरु।।२६३।।

अर्थ—यदि वीरता कातरता दोनों में ही मृत्यु होती है तो तूं कातरता को छोड़ कर धीरता में ही मरण कर॥२६३॥

मृत्युस्तथा समाराध्य चाराधनाचतुष्टयम्।
कार्यो यथा पुनर्न स्याज्जन्ममृत्युकदम्बकम्।।२६४।।

अर्थ—चार आराधनाओं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप की अच्छी तरह आराधना कर उस प्रकार मरण करना चाहिये जिससे कि फिर जन्म मरण का समूह प्राप्त न हो सके॥२६४॥

मृत्युकाले विषोढव्याः क्षुत्तृषादिपरीषहाः।
उपसर्गाश्च रोगाश्च सर्वे स्वर्मोक्षैकहेतवे।।२६५।।

अर्थ—मृत्यु काल में क्षुधा तृषा आदि परीषह, उपसर्ग तथा रोग इन सभी उपद्रवों को स्वर्ग और मोक्ष के हेतु सहन करना चाहिये॥२६५॥

अमलगुणनिधानं मोक्षवृक्षस्य बीजं
कुमतिदृढकपाटं स्वर्गसंदानदक्षम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनमुनिगणसेव्यं धर्मरत्नस्य गेहं

कुरु मरणमपि त्वं वृत्तसंन्यासपूर्वम्।।२६६।।

अर्थ–जो निर्मल गुणों का भण्डार है, मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज है, कुगतियों का सुदृढ़ कपाट है, स्वर्ग के देने में समर्थ है, जिन देव तथा गुरुओं के द्वारा सेवनीय है, और धर्मरूपी रत्नों का घर है ऐसे चारित्र सहित सन्यास मरण को तूं कर।।२६६।।

आशां त्यज

मन्ये स एव पुण्यात्मा यस्याशा निधनं गता।

इहामुत्र च निःसङ्ग इन्द्रचक्रधरैः स्तुतः।।२६७।।

अर्थ–मैं मानता हूँ कि जिसकी आशा नष्ट हो गई है वही पुण्यात्मा है। निःस्पृहमनुष्य इसलोक और पर लोक में इन्द्र तथा चक्रवर्तियों के द्वारा स्तुत होता है।।२६७।।

तपश्चारित्रधर्मादि सर्वं कृत्वा समीहते।

स्वर्गऋद्ध्यादिकं यः स भस्मार्थं सद्वनं दहेत्।।२६८।।

अर्थ–जो मनुष्य तप, चारित्र तथा धर्म आदि सब कुछ करके स्वर्ग की विभूति आदि की इच्छा करता है वह भस्म के लिये समीचीन वन को भस्म करता है।।२६८।।

वृद्धो यः कुरुते ह्याशां नारीपुत्रसुखादिके।

न च वैराग्यमादत्ते दुर्गतिं याति सोऽधमः।।२६९।।

अर्थ–जो मनुष्य वृद्ध होकर स्त्री पुत्र आदि के सुख की आशा करता है परन्तु वैराग्य को ग्रहण नहीं करता वह नीच दुर्गति को प्राप्त होता है।।२६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशां न कुरुते मुक्तौ तस्याशा सफला भवेत्।
वृथाऽपरा मनुष्याणां पापागमनकारिणी।।२७०।।

अर्थ–जो मनुष्य मुक्ति की भी आशा नहीं करता, उसकी आशा सफल होती है। पाप के आगमन को करने वाली मनुष्यों की अन्य आशा वृथा है।।२७०।।

आशां दुर्गतिप्रापणैकचतुरां स्वर्गालये चार्गलां
पापातापविशोकरोगदभयदां सन्मानविध्वंसिकाम्।
लोके सद्धनभक्षणैककुशलां सद्धर्मनिर्णाशिकां
भ्रातस्त्वं त्यज सर्पिणीमिव चलां स्वर्मुक्तिसंसिद्धये।।२७१।।

अर्थ–जो दुर्गति को प्राप्त कराने में अत्यन्त चतुर है, स्वर्ग रूप घर की आगल है, पाप आताप, शोक, रोग, और भय को देने वाली है, सन्मान को नष्ट करने वाली है लोक में समीचीनधन के भक्षण करने में अत्यन्त कुशल है उत्तम धर्म को नष्ट करने वाली है तथा सर्पिणी के तुल्य चञ्चल है। हे भाई! उस आशा को तूं स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि के लिये छोड़।।२७१।।

कुटुम्बसङ्गं त्यज

कुटुम्बमहितं ज्ञेयं दानधर्मनिवारकम्।
पापस्य प्रेरकं नृणां दुस्त्यजं त्यज शत्रुवत्।।२७२।।

अर्थ–दान तथा धर्म में वाधा डालने वाले कुटुम्ब को अहित-अकल्याणकारी जानना चाहिए जो मनुष्यों को पाप की प्रेरणा करने वाला है तथा जिसका छूटना कठिन है ऐसे कुटुम्ब को तूं शत्रु के समान छोड़।।२७२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथाम्रे फलिते नित्यं भुक्त्यर्थं च खगाः स्थिताः।
फलापाये पुनर्नष्टा विद्धि त्वं स्वजनास्तथा।।२७३।।

अर्थ—जिस प्रकार फले हुए आम पर पक्षी खाने के लिये नित्य ही आकर बैठते हैं परन्तु फल समाप्त हो जाने पर चले जाते हैं इसी प्रकार कुटुम्बीजन हैं ऐसा तूं जान।।२७३।।

अन्या माता पिता चान्यः परा भार्या च बान्धवाः।
पुत्रोऽन्यो जायते लोके विद्धि तिर्यग्नरेषु च।।२७४।।

अर्थ—संसार में तिर्यञ्च और मनुष्यों के बीच माता अन्य है, पिता अन्य है, स्त्री अन्य है, भाई अन्य है, और पुत्र अन्य होता है ऐसा जान।।२७४।।

हृदये यस्य रामाग्निर्जाज्वलीति कुतः स्थिति।
तस्य सद्धर्मसंज्ञानवृत्तध्यानादिवस्तुनः।।२७५।।

अर्थ—जिसके हृदय में स्त्री रूपी अग्नि प्रज्वलित है उसके हृदय में सद्धर्म, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तथा समीचीन ध्यान अध्ययन आदि वस्तुओं की स्थिति कैसे हो सकती है?।।२७५।।

दारा दुर्गतिदानमार्गकुशला मुक्त्यालयेष्वर्गलाः
पुत्राः सद्धनभक्षणैकचतुराः पाशोपमाः प्राणिनाम्।
पुत्रीवान्धवमित्रमातृपितरौ निघ्नन्ति धर्माकरं
भ्रातस्त्वं त्यज चैतदेव सकलं धर्मं गुरुं चाश्रय।।२७६।।

अर्थ—प्राणियों के लिये स्त्रियां दुर्गति को देने वाले मार्ग के बनाने में कुशल हैं तथा मुक्ति रूपी घर में आगल हैं, पुत्र समीचीन धन के खाने में अत्यन्त चतुर तथा पाश के समान है, पुत्री, भाई, मित्र, माता और पिता धर्म की खान को नष्ट करते हैं, इसलिये हे भाई तूं इन सबको छोड़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और धर्म तथा गुरु का आश्रय ग्रहण कर॥२७६॥

कर्मशत्रुं जहि

नैव गच्छति नायाति स्वयं जीवो हि पङ्गुवत्।
कर्मारिभिश्च नीयेत चतुर्गतिषु लोलुपः॥२७७॥

अर्थ—यह लम्पट जीव, लंगड़े मनुष्य के समान चारों गतियों में न स्वयं जाता है और न स्वयं आता है किन्तु कर्म रूप शत्रुओं के द्वारा ले जाया जाता है॥२७॥

यत्किञ्चित्कुरुते जीवः क्रोधलोभभयादिकान्।
नाट्यमानो नटन्दारुपुमान् कर्मनटैर्यथा॥२७८॥

अर्थ—यह जीव क्रोध लोभ भय आदिक जो कुछ भी करना है सो नाचने वाली कठपुतली के समान कर्म रूपी नट के द्वारा नचाया जाता हुआ करता है॥२७८॥

यत्रैव देशकालादिदिने कर्मोदयो भवेत्।
तत्र स्यात् किं वृथा शोको हानिवृद्धिशुभाशुभम्॥२७९॥

अर्थ—जिस देश काल आदि के दिन कर्म का उदय होता है उसी दिन हानि वृद्धि आदि शुभ अशुभ फल होता है व्यर्थ हो शोक क्यों होता है॥२७९॥

पापेन दुःखदारिद्र्यदुर्गतोनाञ्च संभवः।
भवेत्पुण्यवशात्स्वर्गो यदिष्टं तत्समाचर॥२८०॥

अर्थ—पाप से इस जीव को दुःख दरिद्रता और दुर्गतियों की उत्पत्ति होती है और पुण्य के वश से स्वर्ग होता है। हे जीव! जो तुझे इष्ट हो वह कर॥२८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म त्वं जहि दुःखशोकभयदं संतापदोषाकरं।
रोगक्लेशपराभवस्य जनक मुक्तिश्रियस्तस्करम्।
संसारार्णवमज्जकं हि विषमं पाशं बुधैर्नाशितं
भ्रातः संयमतीक्ष्णखड्गसबलच्छेदं विमुक्त्याप्तये।।२८१।।

अर्थ–हे भाई! जो दुःख शोक और भय को देने वाला है, संताप और दोषों की खान है, मुक्ति रूपी लक्ष्मी का चोर है, संसार रूपी समुद्र में डुबाने वाला है, विषम पाश स्वरूप है तथा विद्वानों ने जिसका नाश किया है ऐसे कर्म को तूं मुक्ति प्राप्ति के लिये संयम रूप तलवार के प्रबल प्रहार से खण्ड-खण्ड कर नष्ट कर दे।।२८१।।

चतस्रो भावनाः कुरु

कर्मायते जने शत्रौ रागद्वेषमदान्विते।
मानक्रोधादिकं त्यक्त्वा माध्यस्थ्यं भज मुक्तये।।२८२।।

अर्थ–जो कर्म के आधीन होने से राग द्वेष होकर अहंकार से युक्त हैं ऐसे शत्रुजन पर मान तथा क्रोध आदि को छोड़कर मुक्ति प्राप्त करने के लिये माध्यस्थभाव की आराधना कर। भावार्थ–जिस शत्रु पर क्रोध या मान करने का प्रसंग आता है उसके विषय में विचार करना चाहिये कि यह बेचारा कर्म के आधीन है इसलिये राग द्वेष और अहंकार रूप प्रवृत्ति कर रहा है। रागादि रूप प्रवृत्ति करना इसका स्वभाव नहीं है इसलिये इस पर क्या क्रोध करना ऐसा विचार कर मध्यस्थ्य भाव धारण करना चाहिए। यह माध्यस्थ्य भाव मुक्ति का कारण है।।२८२।।

ज्ञानचारित्र सद्धर्मे गुरुश्रावककारणे।
चैत्यचैत्यालये कार्ये पक्षपातं सदा कुरु।।२८३।।

अर्थ–हे भाई! तूं ज्ञान चारित्र रूप समीचीन धर्म, गुरु और श्रावक तथा प्रतिमा और मन्दिर के कार्य पर सदा पक्षपात कर। भावार्थ–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि माध्यस्थ्य भाव परम धर्म है तथापि यदि पक्षपात का प्रसंग आता है तो उपर्युक्त ज्ञान चारित्र आदि का पक्ष स्वीकृत करना चाहिये॥२८३॥

ज्ञाने तपसि धर्म्मे च जिने शास्त्रे गुरौ सदा।
सेवा हिताय कर्तव्य स्यस्च सर्वसुखप्रदा।।२८४।।

अर्थ–आत्महित के लिये ज्ञान, तप, धर्म जिनेन्द्र देव, जिन शास्त्र तथा गुरु की सदा सेवा करना चाहिये। इनकी सेवा समस्तसुखों को देने वाली है॥२८४॥

संतोषो न च कर्तव्य स्तपोधर्मादिके सदा।
सज्ज्ञानपाठने दाने पूजासद्गुरुसेवने।।२८५।।

अर्थ–तप, धर्म, सम्यग्ज्ञान के अध्यापन, दान, पूजा और सद्गुरुओं की सेवा में कभी संतोष नहीं करना चाहिये। भावार्थ–तप आदि कार्यों को करते समय ऐसा विचार नहीं करना चाहिये कि मैं बहुतकर चुका अब अधिक करने की आवश्यकता नहीं है। इन कार्यों के करने में सदा उत्साहित रहना चाहिये॥२८५॥

सत्वे त्वं कुरु मित्रभावमतुलं सिद्धान्ततत्त्वान्विते
जीवे सद्गुणधर्मरत्नसदने राग पर मुक्तिदम्।
क्लिष्टे दुःखवियोगरोगसहिते सारां कृपां सिद्धिदां
रागद्वेषमदान्वितेऽतिविषमे माध्यस्थ्यभावं च भोः।।२८६।।

अर्थ–हे भाई! तू सिद्धान्त के रहस्य से युक्त जीवों पर अनुपम मैत्रीभाव कर सद्गुण तथा धर्म रूप रत्नों के घर स्वरूप गुणीजनों पर मुक्ति को प्रदान करने वाला उत्कृष्ट अनुराग कर, दुःख वियोग तथा रोग से सहित क्लिष्ट-कलेशयुक्त जीवों पर सिद्धि को प्रदान करने वाली श्रेष्ठ दया कर और राग द्वेष तथा अहंकार से युक्त अत्यन्त उद्दण्ड जीवों पर माध्यस्थ्य भाव धारण कर॥२८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामन्त्रं जप

यथाणुभिः परं नाल्पं महद् गगनान् न परम्।
तथा पञ्चनमस्कारमन्त्रान्मन्त्रो न विद्यते।।२८७।।

अर्थ–जिस प्रकार परमाणुओं से अधिक छोटा और आकाश से अधिक दूसरा बड़ा नहीं है उसी प्रकार पञ्च नमस्कार मन्त्र से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है।।२८७।।

दुःखे सुखे चाब्दिभये कुदेशे व्याधौ गृहे चापि च पर्वतेषु
सुप्ते विषादौ विषमे रणे च पदे पदे त्वं जप मन्त्रराजम् ।।२८८।।

अर्थ–दुःख, सुख, समुद्र का भय, कुदेश, रोग, घर, पर्वत, शयनावस्था, विष आदिक, और विषम युद्ध में तू पद पद पर मन्त्र राज का जाप कर।।२८८।।

यः सप्तव्यसनासक्तो मन्त्रराजं जपेन्नरः।
मरणे सोऽपि स्वर्गश्रीनाथो भवति नान्यथा।।२८९।।

अर्थ–सात व्यसनों में आसक्त रहने वाला मनुष्य भी यदि मृत्यु के समय मन्त्र राज का स्मरण करे तो वह भी स्वर्ग लक्ष्मी का स्वामी हो सकता है अन्यथा नहीं।।२८९।।

जपन्ति ये न मन्त्रेशं दुःखदारिद्रयनाशनम्।
स्वर्गमुक्तिप्रदं तेषां वदनं रन्ध्रवद् वृथा।।२९०।।

अर्थ–जो मनुष्य दुःख और दरिद्रता, को नष्ट करने वाले, स्वर्ग एवं मोक्षदायक मन्त्रराज का जप नहीं करते हैं उनका मुख छिद्र के समान व्यर्थ है।।२९०।।

यत् यसंग्रामकरीन्द्रवह्निविषमैः सर्पादिरोगव्रजै
र्यत् सिंहव्रजतस्करै ग्रहभ्रमैर्व्यापत्सरित्सागरैः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतप्रेतपिशाचराक्षसमहादुर्बन्दराजादिकै

र्यज्जातं भयमत्र मन्त्रजपनान्नश्यन्त्यहो तं जप।।२९१।।

अर्थ—संग्राम, गजेन्द्र, अग्नि, विषम स्थान, सर्प आदिक तथा रोगों के समूह से जो भय होता है, सिंहो के समूह, चोर, ग्रह भ्रम, आपत्ति, नदी और समुद्र से जो भय होता है, भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस तथा अत्यन्त दुराग्रही राजा आदि से जो भय इस लोक में होता है वह सब मन्त्रराज के जप से नष्ट हो जाते हैं अतः हे भाई! तू उसका निरन्तर जाप कर॥२९१॥

धर्मौषधं कुरु

औषधं परमं ज्ञेयं धर्मो वृत्तं तपो जपः।

दानं पूजादिकं सर्वं रोगक्लेशविनाशकम्।।२९२।।

अर्थ—धर्म, चारित्र, तप, जप, दान तथा पूजादिक समस्त उत्तम कार्यों को रोग सम्बन्धी क्लेशों का नाश करने वाला उत्तम औषध जानना चाहिये॥२९२॥

नश्यन्ति येन धर्मेण जन्ममृत्युजरादिकाः।

किं न नश्यन्ति तेनैव रोगक्लेशभयादयः।।२९३।।

अर्थ—जिस धर्म के द्वारा जन्म, मृत्यु तथा जरा भय आदिक नष्ट हो जाते हैं उसी धर्म के द्वारा क्या रोग, क्लेश तथा भय आदिक नष्ट नहीं होते?॥२९३॥

रोगक्लेश निर्वृत्यर्थं मिथ्यात्वं यस्तु सेवते।

रोगक्लेशकरं सोऽधीस्तैलेनाग्नि निवारयेत्।।२९४।।

अर्थ—जो मनुष्य रोग सम्बन्धी क्लेश को दूर करने के लिये उन्हीं क्लेशों को करने वाले मिथ्यात्व का सेवन करता है वह मूर्ख तेल से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्नि को बुझाना चाहता है।।२९४।।

शरीरं दह्यते रोगैर्नचात्मा सत्सुखाकरः।
अग्निना दह्यते गेहं नैवाकाशस्तदाश्रितः।।२९५।।

अर्थ—रोगों के द्वारा शरीर नष्ट होता है समीचीन सुख की खान स्वरूप आत्मा नष्ट नहीं होता। क्योंकि अग्नि के द्वारा घर तो जलता है उसके आश्रय रहने वाला आकाश नहीं जलता है।।२९५।।

धर्मशरणं कुरु

व्याधिदुःखभराक्रान्तं नीयन्ते यममन्दिरम्।
प्राणिनः को भवेत् त्राता धर्मं देवं गुरुं विना।।२९६।।

अर्थ—प्राणी, व्याधि रोगजनित दुःखों के भार से युक्त यमराज के घर ले जाये जाते हैं अर्थात् प्राणी रोगों के दुःख से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, देव गुरु और धर्म के बिना उन प्राणियों का रक्षक कौन है?।।२९६।।

धर्मं ज्ञानं च चारित्रं तपो दानं जपादिकम्।
शरण्यं मुनिभिः प्रोक्तं दुःखशोकान्तकं नृणाम्।।२९७।।

अर्थ—मुनियों ने मनुष्यों का दुःख शान्त करने के लिये धर्म, ज्ञान, चारित्र, तप, दान तथा जप आदिक को शरण्य भूत कहा है।२९७।।

स्वयं घर्षति हस्तौ च प्राणी भालं निहन्ति च।
वाक्येनापि समर्थोऽयं हा हा धर्मं विना मृतः।।२९८।।

अर्थ—बड़े दुःख की बात है कि यह प्राणी मरते समय स्वयं हाथों को मलता है, माथा पीटता है और वचन बोलने में समर्थ नहीं हो पाता। धर्म के बिना यों ही मर जाता है।।२९८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा घाट्या भयेनैव धनं निस्सार्यते गृहात्।
यमघाटीभयेनैव तथा धर्मं चरेद् बुधः।।२९९।।

अर्थ–जिस प्रकार आक्रमण के कारण ही घर से धन निकाला जाता है उसी प्रकार यम के आक्रमण के भय से ही विद्वान् को धर्म आचरण करना चाहिए।।२९९।।

यथाग्निज्वलिताद् गेहाद वित्तं निष्कास्यते बुधैः।
तथा जराग्निना तप्ते देहे वृद्धश्चरेत्तपः।।३००।।

अर्थ–जिस प्रकार अग्नि से जलते हुए घर से ज्ञानी मनुष्य धन को निकाल लेता है उसी प्रकार वृद्ध मनुष्य को चाहिये कि वह वृद्धावस्था रूप अग्नि के द्वारा शरीर के संतप्त होते ही तप का आचरण करे।।३००।।

बालत्वेऽपि न यः कुर्याद् धर्मं स्वर्गगतिप्रदम्।
पश्चात्कर्तुं न शक्नोति (जरसा जीर्णता गतः)।।३०१।।

अर्थ–जो मनुष्य वाल अवस्था से ही स्वर्गगति को देने वाले धर्म को नहीं करता है वह पीछे वृद्धावस्था से जीर्णता को प्राप्त होता हुआ उस धर्म के करने में समर्थ नहीं होता।।३०१।।

यावदायुर्न क्षीयते तावद् धर्मं सदा कुरु।
आदीप्ते भवने पश्चान्न कूपखननं यथा।।३०२।।

अर्थ–हे भाई! जब तक आयु क्षीण नहीं हुई है तब तक तू सदा धर्म कर। अन्यथा पीछे मकान के जलने लगने पर कुआ खुदाने के समान दशा होती है।।३०२।।

धर्मं दानं च कुर्वन्ति बालत्वेऽपि विचक्षणाः।
वृद्धत्वं समायाति नो वा न ज्ञायते क्वचित्।।३०३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—बुद्धिमान् मनुष्य वाल्य अवस्था में भी धर्म और दान करने लगते हैं क्योंकि 'कहीं बुढ़ापा आता है या नहीं' यह नहीं जानते।

भावार्थ—कभी वृद्धावस्था आने के पूर्व ही मृत्यु हो जाती है इसलिये हम वृद्धावस्था में धर्म साधना करेंगे इस अभिप्राय से निश्चिन्त 'नहीं बैठना।।३०३।।

खचरनरसमग्रैर्देवदैत्यासुरेन्द्रैः
सकलगदविरोधैर्मन्त्रतन्त्रादिशस्त्रैः।
यमनृपवरभृत्यैर्नीयमानोऽयमङ्गी
शरणमपि वृषं स्याद् रक्ष्यते नैव चान्यैः।।३०४।।

अर्थ—हे मित्र! यम रूप राजा के मृत्युयों के द्वारा ले जाया जाता हुआ यह प्राणी समस्त विद्याधर एवं मनुष्यों के द्वारा, देव दैत्य और असुरेन्द्रों के द्वारा समस्त रोगों को रोकनेवाले मन्त्र तन्त्र आदि शस्त्रों के द्वारा तथा उपायों के द्वारा बचाया नहीं जा सकता इसलिये धर्म ही शरण है।।३०४।।

एकत्वं [१]भज

जातश्चैक्रो मृतश्चैक एको धर्मं करोति च।
पापं स्वर्गसुखे जीवः श्वभ्रे गच्छति कः समः।।३०५।।

अर्थ—यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेले ही मरता है, अकेला ही धर्म करता है, अकेला ही पाप करता है, अकेला ही स्वर्ग सुख में जाता है और अकेला ही नरक में जाता है। इसका साथी कौन है? अर्थात् कोई नहीं।।३०५।।

---

१. चिन्तिय इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूढ़ाः कुर्वन्ति ये मे मे वपुः पुत्रगृहादिकम्।
तेऽपि त्यक्त्वा च रोगार्ता मज्जन्ति भवसागरे।।३०६।।

अर्थ–जो मूर्ख प्राणी, शरीर पुत्र तथा घर आदिक 'मेरे हैं' ऐसा करते हैं वे भी उन्हें छोड़ कर रोग से पीड़ित हो संसार सागर में डूबते हैं।।३०६।।

अन्यो जीवो भवेद्यत्र देहाद्यत्र गृहीदिकम्।
कथमेकत्वमापन्न मज्ञो ब्रते न तत्ववित्।।३०७।।

अर्थ–जहाँ जीव ही शरीर से अन्य है वहाँ गृहादिक एकत्व की कैसे प्राप्त हो सकते हैं? अज्ञानी ही उन्हें एक कहता है तत्व का ज्ञाता नहीं।।३०७।।

कुटुम्बधनधान्यादि सर्व कर्मसमुद्भवम्।
देहं च मन्यते यः स्वं कर्म बन्धात्यसौ कुधीः।।३०८।।

अर्थ–जो दुबुर्द्धि, कर्म से उत्पन्न होने वाले कुटुम्ब धन धान्य आदि सब को तथा शरीर को अपना मानता है वह कर्म को बांधता है।।३०८।।

एको धर्ममुपार्जनं विबुध; कृत्वा स्वयंगच्छति।
स्वर्ग पापमुपार्ज्य घोरनरकं दुःखाकरं प्राणभृत्।
एको दुष्कर वृत्तसारमपि भो धृत्वा च मुक्त्यालप
तस्मात्त्वं भज चैकमेकशरणं धर्मं त्यज स्वग्रहम्।।३०९।।

अर्थ–हे भाई! ज्ञानी जीव, अकेला ही धर्म का उपार्जन कर स्वयं स्वर्ग को जाता है, पाप का उपार्जन कर यह प्राणी अकेला ही दुःखों की खान स्वरूप भयंकर नरक को प्राप्त होता है और अकेला ही अतिशय कठिन श्रेष्ठ चारित्र को धारण कर मोक्ष को प्राप्त करता है इसलिये तूं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक धर्म की ही शरण को प्राप्त हो अपना हठ छोड़॥३०९॥

अनित्यभावनां कुरु

वदत्यत्र जनाग्रेषु घटी घातेन प्रत्यहम्।
धर्मः संचीयतां पथ्यो गतेयं नागमिष्यति।।३१०।।

अर्थ–घड़ी, घण्टा की टक्कर से मनुष्यों के आगे प्रतिदिन यही कहती है कि हितकारी धर्म का संचय कर लिया जावे क्योंकि गई हुई यह घड़ी फिर नहीं आवेगी। भावार्थ–घड़ी का जो घण्टा बजता है उससे वह मानों मनुष्यों को यही संदेश देती है कि हे भाई! कल्याण कारी धर्म का संचय कर ले, एक घड़ी निकल गई अब यह लौट कर नहीं आवेगी॥३१०॥

नित्यं संक्षीयते चायुर्हस्तन्यस्ताम्बुवत् क्षणम्।
कथं न क्रियते धर्मो बुधैः सविगन्मानसैः।।३११।।

अर्थ–जब कि आयु हाथ में रखे हुए पानी के समान क्षण-क्षण में क्षीण हो रही है तब ज्ञानी भयभीत हृदय होकर धर्म क्यों नहीं करते हैं॥३११॥

दिनं प्रति त्वया वत्स चिन्तनीय भया कृतम्।
धर्मं दानं न वा नष्टमायुः खण्ड हि दुर्लभम्।।३१२।।

अर्थ–हे वत्स! तुझे प्रतिदिन ऐसा विचार करना चाहिये कि मैंने धर्म अथवा दान किया है या नहीं क्योंकि बीता हुआ आयु का खण्ड फिर दुर्लभ है।

भावार्थ–आयु का जो अंश बीत जाता है वह फिर लौटकर नहीं आता इसलिये प्रत्येक प्राणों को धर्म तथा दान के द्वारा अपनी आयु को सफल करना चाहिये॥३१२॥

धर्मं विना न नेतव्या चैका काल कला बुधैः।
यमदूतः समायाति नेतुं न ज्ञायते क्वचित्।।३१३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–ज्ञानी जीवों को समय की एक कला भी धर्म के विना नहीं बिताना चाहिये क्योंकि यमदूत लेने के लिये आ रहा है यह कहीं ज्ञात नहीं होता॥३१३॥

प्रातः श्रीजिनवन्दनादिकभये! कृत्वा गुरून्मानय
त्वं शास्त्रं शृणु धर्मतत्त्व कथकं मध्याह्नकाले कुरु।
सद्देवार्चनपात्रदानमपरे काले च धर्माप्तये।
श्रीदेवस्तवनं च सौख्यसदनं मुक्त्यङ्गनाहेतवे।।३१४।।

अर्थ–अरे वत्स! तू प्रातः काल श्री जिनेन्द्रदेव की वन्दना आदिक कर गुरुओं का सम्मान कर, धर्म के रहस्य को कहने वाले शास्त्र सुन, मध्याह्न काल में समीचीन देव का पूजन तथा पात्रदान कर और अपराह्नकाल में धर्म की प्राप्ति के लिये तथा मुक्ति रूपी अङ्गना के हेतु सुखदायक भी श्रीजिनेन्द्रदेव का स्तवन कर॥३१४॥

विवेकं भज

लक्ष्मीर्बुद्धिकृतज्ञतादिसुगुणा वृत्तं च दानं तपो।
वैराग्यं च जितेन्द्रियं सुपठनं शास्त्रस्य देवार्च्चनम्।
नैः सङ्गयञ्च दयार्द्रता च विफला ध्यानं विवेकं विना
सारासारसमग्रचिन्तनमहो सर्वं वृथा प्राणिनाम्।।३१५।।

अर्थ–प्राणियों की लक्ष्मी तथा बुद्धि कृतज्ञता आदि उत्तम गुण, चारित्र दान, तप, इन्द्रियों को जीतने वाला वैराग्य, शास्त्र का स्वाध्याय, देवपूजा, परिग्रह का त्याग, दयार्द्रता, ध्यान और सार असार का समस्त चिन्तन, यह सब विवेक के बिना व्यर्थ है॥३१५॥

देवादेवविचारो यः पात्रपात्रे शुभाशुभे।
गुणागुणे च शास्त्रादौ विवेकः सोऽभिधीयते।।३१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—देव अदेव पात्र अपात्र, शुभ अशुभ गुण अगुण और शास्त्र आदि के विषय में जो विचार है वह विवेक कहलाता है।।३१६।।

दाढ़िकायाश्च व्याजेन तृणस्य मूढकं ददौ।
विद्धि दर्मविवेकादि त्यक्तानां चरितं यथा।।३१७।।

अर्थ—एक समय एक बालक अपने पितामह की गोद में खेलता हुआ बाबा की लम्बी दाढ़ी देख कर ललचा गया और यह कह कर रोने लगा कि मैं तो दाढ़ी लूंगा। पितामह उसे पुचकारते हुए बहुत परेशान हो गये अन्त में दादी ने घास की एक दाढ़ी बनाकर जब बालक को दी तब वह शान्त हुआ। इसी लोक कथा के आधार पर यहाँ कहा गया है कि दाढ़ी के बहाने बालक को तृण घास का समूह दिया। सो जैसे–वह घास का समूह वास्तविक दाढ़ी नहीं थी उसी प्रकार धर्म तथा विवेक आदि से रहित लोगों का चारित्र वास्तविक चारित्र नहीं है।।३१७।।

अञ्जलिद्वयधान्यं हि नरो भुङ्क्ते धनेश्वरः।
निर्धनो वेति मत्वाहो कुतृष्णां त्यज पापदाम्।।३१८।।

अर्थ—अहो भाई! मनुष्य चाहे धनाढ्य हो चाहे निर्धन, दो मुट्ठी अन्न ही खाना है ऐसा मान कर तूं पाप को देने वाली कुतृष्णा का त्याग कर।।३१८।।

वरं भिक्षाटनेनैव ह्युदरस्येह पूरणम्।
न च शाल्योदनै कृत्वा पापं दुर्गतिदुःखदम्।।३१९।।

अर्थ—इस लोक में भिक्षाटन के द्वारा पेट का भर लेना अच्छा है परन्तु दुर्गति के दुःख देने वाले पाप को कर.प्राप्त किये हुए धान के भात से पेट भरना अच्छा नहीं है।।३१९।।

तावद् धत्ते परं मानं प्रतिष्ठां पूज्यतां पुमान्।
गुरुतां यावन्न ब्रूते देहीति वचनं लघु।।३२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मनुष्य तभी तक उत्कृष्ट मान, प्रतिष्ठा पूज्यता और गुरुता को धारण करता है जब तक कि वह 'देओ' इस हीन वचन को नहीं बोलता है॥३२०॥

गुरुत्वं मेरुवत्प्राप्तस्तपश्चारित्रसद्गुणैः।
यो मुनिर्याञ्चया सोऽपि लघुः स्यादर्कतूलवत्॥३२१॥

अर्थ—जो मुनि तपश्चरण तथा चारित्र रूप सद्गुणों के द्वारा मेरू के समान गुरुत्व को प्राप्त हुआ है वह भी याचना के द्वारा आक की रुई के समान लघु हो जाता है॥३२१॥

अर्थ—जो राग द्वेष से रहित सर्वज्ञ है उसके द्वारा कहा हुआ धर्म और शास्त्र प्रमाण भूत है धूर्तों के द्वारा कहा हुआ प्रमाण भूत नहीं है॥३२२॥[1]

यो रागद्वेषनिर्मुक्तः सर्वज्ञस्तेन भाषितम्।
धर्मं श्रुतं प्रमाणं स्यान्नान्यद् धूर्तैश्च कीर्तितम्॥३२३॥

अर्थ—सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए संशय रहित शास्त्र के विषय में जो शङ्का करता है वह पापी अथवा अभव्य है तथा उसके ज्ञान आदि नेत्र लुप्त हो गये हैं॥३२३॥

हेमवच्च सदा धर्मो ग्राह्यः कृत्वा परीक्षणम्।
दक्षैर्बहुप्रकारो हि लोकशास्त्रेषु कीर्तितम्॥३२४॥

अर्थ—चतुर मनुष्यों को कोक तथा शास्त्र में कही हुई परीक्षा कर ही सुवर्ण के समान नाना प्रकार का धर्म सदा ग्रहण करना चाहिये।

भावार्थ—जिसप्रकार सुवर्ण को खरीदते समय उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिये॥३२४॥

---

१. यहाँ पर ३२२ नं. का श्लोक पूर्व प्रति में नहीं छपा। सिर्फ अर्थ दिया हुआ है। वैसा ही यहाँ दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयविरतिमूलं सत्तपः स्कन्धबन्धं
सकलविनयशाखं ज्ञानविज्ञानपात्रम्।
विमलसमितिपुष्पं मुक्तिनारीफलाढ्यं
भज विगतकलङ्कं कल्पवृक्षं विवेकम्।।३२५।।

अर्थ—विषयों से विरक्त होना ही जिसकी जड़ है, सम्यक् तप ही जिसका स्कन्ध तना है, समस्त प्रकार की विनय ही जिसकी शाखाएँ हैं, ज्ञान विज्ञान ही जिसके पत्ते हैं, निर्मल समितियां ही जिसके फूल हैं, जो मुक्ति स्त्री रूपी फल से सहित है तथा कलङ्क से रहित है ऐसे विवेक रूपी कल्प वृक्ष की तू सेवा कर।।३२५।।

धर्मसम्बलं कुरु

गव्यूतिं हि व्रजन् ग्रामं यः पाथेयं करोति सः।
मृत्युमार्गे न वै कुर्याद् दुर्बुद्धिः स्वजनार्पितम्।।३२६।।

अर्थ—जो मनुष्य दो कोश प्रमाण गांव को जाता हुआ आत्मीय जनों के द्वारा प्रदत्त सम्बल (नाश्ता) को ग्रहण करता है वह दुबुर्द्धि मृत्यु के भाग में जाता हुंआ क्या सम्बल हो ग्रहण नहीं करेगा?।।२२६।।

सम्बल कुरु रे मूढ धर्मं दानं तपो जपम्।
इहामुत्र हितार्थाय सम्बलं व्रजन भवेत्।।३२७।।

अर्थ—अरे मूर्ख! धर्म, दान, तप और जप रूप सम्बल को ग्रहण कर क्योंकि सम्बल के बिना जाना न इस लोक में हित कर हैं और न पर लोक में।।३२७।।

धर्मसम्बलतः स्वर्गं श्वभ्र पापफलाद् भजेत्।
सुखं दुःख विदित्वा च यदिष्टं तत् समाचरः।।३२८।।

अर्थ—यह जीव धर्म रूप सम्बल से स्वर्ग को और पाप रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बल से नरक को प्राप्त होता है अतएव सुख और दुःख का विचार कर जो तुझे इष्ट हो अच्छा लगे वह कर॥३२८॥

गृहव्यापारसंसक्तो यो धर्मं न करोति सः।
पापसम्बलमादाय श्वभ्रतिर्यग्गतिं व्रजेत्।।३२९।।

अर्थ–जो मनुष्य घर के व्यापार में लीन होता हुआ धर्म नहीं करता है वह पाप का सम्बल लेकर नरक और तिर्यञ्च गति को प्राप्त होता है॥३२९॥

धर्मात्मसम्बलतो नृदेवखचर व्यालेन्द्रसौख्यं भवे
दत्रामुत्र च चन्द्रनिर्मलयशः पूजादिकं प्रत्यरम्।
पापेनैव च दुःखदुर्गतिभवं श्वभ्रादिकं दुस्सहं
निन्दाऽकीर्तिगुणां तदेव कुरु भो भ्रातर्यदिष्टं तव।।३३०।।

अर्थ–धर्म रूपी सम्बल से मनुष्य, देव, विद्याधर और धरणेन्द्र के सुख को प्राप्त होते हैं, इस लोक और परलोक में चन्द्रमा के समान निर्मल यश तथा पूजा सन्मान आदिक प्रतिदिन प्राप्त होते हैं और पाप के द्वारा दुर्गति सम्बन्धी दुःख, नरकादिकगति तथा असहनीय निन्दा और अपयश प्राप्त होता है इसलिये हे भाई! जो तुझे इष्ट हो वही कर॥३३०॥

मनुजत्वं दुर्लभं विदुः

संसारेऽत्र दुरन्तदुःखभयदे सारं नृजन्म क्वचित्
लब्धं कल्पतरुपमं हि यदि तत्संप्राप्य देशं कुलम्।
आरोग्यं सकलेन्द्रिय च सुगुरु ज्ञानं विवेकं समं
संसाराम्बुधितारके सुखकरे धर्मे यतध्वं बुधाः।।३३१।।

अर्थ–बहुत भारी दुःख और भय को देने वाले इस संसार में यदि कहीं कल्पवृक्ष के समान मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तो देश, कुल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरोग्य, इन्द्रियों की पूर्णता, सुगुरु, ज्ञान और समस्त विवेक को प्राप्त कर हे विद्वजन हो! संसार रूपी समुद्र से तारने वाले सुखकारक धर्म में यत्न करो॥३३१॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य यः प्रमादं तनोति वै।
धर्मे सुखाकरे सोऽत्र ऋणाग्राहीव सीदति।।३३२।।

अर्थ—जो प्राणी दुर्लभ मनुष्य भव पाकर सुख की खान स्वरूप धर्म में प्रमाद करता है निश्चय से वह इस लोक में ऋणी-कर्जदार मनुष्य के समान दुखी होता है॥३३२॥

अम्बुधौ नष्टरत्नं वा दैवादायाति जातुचित्।
मानुष्यं न च धर्मेण विना जन्मशतैरपि।।३३३।।

अर्थ—समुद्र में नष्ट हुआ गिरा हुआ रत्न कदाचित् भाग्यवश वापिस आ जाता है परन्तु धर्म के बिना नष्ट हुआ मनुष्य भव सैकड़ों जन्मों में भी वापिस नहीं आता॥३३३॥

संसारे यदि रे मूढ! लब्धं दैवाद्धि मानवम्।
कश्चिद्धर्मस्त्वया कार्यः सफलं येन तद् भवेत्।।३३४।।

अर्थ—अरे मूर्ख! संसार में यदि भाग्य वश मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तो तुझे धर्म करना चाहिये जिससे वह सफल हो सके॥३३४॥

सद्धर्मं यः परित्यज्य भुङ्क्ते संसारजं सुखम्।
मनुजत्वेऽमृतं त्यक्त्वा स गृहणाति महाविषम्।।३३५।।

अर्थ—जो पुरुष, मनुष्य भव में समीचीन धर्म को छोड़ कर सांसारिक सुख का उपभोग करता है वह अमृत को छोड़ कर महाविष को ग्रहण करता है॥३३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमेन विना प्राणी पशुरेव न संशयः।
खाद्यखाद्यं न जानाति भेदः शृङ्गकृतो भवेत्।।३३६।।

अर्थ–नियम के बिना यह प्राणी पशु ही है इसमें संशय नहीं है क्योंकि वह खाद्य और अखाद्य खाने योग्य और न खाने योग्य वस्तु को नहीं जानता। उसमें और पशु में मात्र सींगों के द्वारा की हुई विशेषता है पशु के सींग होते और मनुष्य के सींग नहीं होते।।३३६।।

नियमेन विना पुंसां पुण्यं भवति नो ध्रुवम्।
यथा वस्तुपरित्यागे न बुद्धिर्भाषितं विना।।३३७।।

अर्थ–जिस प्रकार भाषण हितोपदेश के बिना किसी वस्तु के परित्याग में बुद्धि नहीं होती उसी प्रकार नियम के बिना पुरुषों को निश्चित ही पुण्य नहीं होता।।३३७।।

शरीरे दुर्बले येऽपि तपः कुर्वन्ति धीधनाः।
स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य प्रशंस्यास्ते नरोत्तमाः।।३३८।।

अर्थ–शरीर के दुर्बल होने पर भी जो बुद्धिमान मनुष्य आत्मबल को प्रकट कर तप करते हैं वे उत्तम मनुष्य प्रशंसनीय हैं।।३३८।।

जातिहीनो भवेदर्च्यो धर्मयुक्तो विचक्षणै।
धर्महीनः सदा निन्द्यः सत्कुलोत्पन्नमानवः।।३३९।।

अर्थ–हीन जाति वाला मनुष्य यदि धर्म से युक्त है तो वह बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा सामान्य होता है परन्तु उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य यदि धर्म से रहित है तो वह सदा निन्दनीय होता है।।३३९।।

स्वल्पश्रीयुता येऽपि दानं कुर्वन्त्यनेकधा।
स्वशक्तिंप्रकटीकृत्य धन्यास्ते दानिनो मताः।।३४०।।

अर्थ–जो मनुष्य अल्प संपदा से युक्त होकर भी आत्मशक्ति को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकट कर नाना प्रकार का दान करते हैं वे धन्य दानी माने गये हैं।।३४०।।

रोगक्लेशमदोन्मादैः सर्वदुःखपरीषहैः।

स्वीकृतं ये न मुञ्चन्ति वृत्तं स्युस्ते बुधैःस्तुताः।।३४१।।

अर्थ–जो मनुष्य, रोग, क्लेश, मद उन्माद तथा समस्तदुःखदायक परीषहों से पीड़ित होने पर भी स्वीकृत चारित्र को नहीं छोड़ते हैं वे विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय होते हैं।।३४१।।

दयासमो नास्त्यपरस्तु धर्मो निर्दोषदेवादपरोऽधिदेवः।

श्रीनिः स्पृहः सद्‌गुरुरेव नान्य एतत्त्रयं त्वं भज मुक्तिबीजम्।।३४२।।

अर्थ–दया के समान दूसरा धर्म नहीं है, वीतरागदेव से बढ़कर श्रेष्ठ देव नहीं है और धनसम्पदा से निःस्पृह रहने वाला गुरु ही सद्‌गुरु है अन्य नहीं। ये तीनों मुक्ति के बीज हैं इनकी तूं आराधना कर।।३४२।।

धन्यास्ते व्रतदानतत्परधियो नित्यं जिनेन्द्रार्चका

धर्मध्याननिरस्तकल्मषविषा चैत्यालयोद्धारकाः।

सद्बिम्बान्यपि कारयन्ति निपुणास्तेषां प्रतिष्ठां पुनः।

सच्छास्त्रश्रवणैकधर्मकुशला ये श्रावकाः स्युः क्षितौ।।३४३।।

अर्थ–जो व्रत और दान में तत्परबुद्धि है, प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करते हैं, धर्मध्यान के द्वारा जिन्होंने पाप रूपी विष को नष्ट कर दिया है, जो जिनमन्दिरों का जिर्णोद्धार कराते हैं, जिन प्रतिमाएं बनवाने के बाद उनकी प्रतिष्ठा कराते हैं तथा समीचीन शास्त्रों के श्रवण रूप प्रमुख धर्म में कुशल हैं वे निपुण भावक पृथिवी पर धन्यभाग प्रशंसनीय माने जाते हैं।।३४३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तव्यसनानि त्यज

(द्यूतव्यनं त्यज)

द्यूतक्रीडां प्रकुर्वन्ति येऽधमा नष्टबुद्धयः।
कुकीर्तिं द्रव्यनाशं च लब्ध्वा श्वभ्रे पतन्ति ते।।३४४।।

अर्थ—जो बुद्धिहीन नीच मनुष्य द्यूतक्रीड़ा करते हैं, जुआ खेलते हैं वे अपयश और द्रव्यनाश को प्राप्त कर नरक में पड़ते हैं।

भावार्थ—जुआ खेलने वाले मनुष्यों को इस लोक में अपयश और धननाश का दुःख उठाना पड़ता है तथा परलोक में नरक के दुःखों का पात्र होना पड़ता है।।३४४।।

व्यसनसकलमूलं दुःखदारिद्रय बीजं
निधनकरमसारं धर्मविध्वंस हेतुम्।
नरकगमनमार्गं पापवृक्षस्य बीजं
त्वमपि त्यज विनिन्द्यं सर्वद्यूतं मनुष्य!।।३४५।।

अर्थ—रे मनुष्य! जो समस्त व्यसनों का मूल है, दुःख और दरिद्रता का बीज है, मृत्यु को करने वाला है, सारहीन है, धर्म के विध्वंस का कारण है, नरक जाने का मार्ग है, पाप रूप वृक्ष का बीज है तथा अत्यन्त निन्दनीय है उस समस्त प्रकार के जुआ को तूं भी छोड़।।३४५।।

मांसव्यसनं त्यज

पलाशनं प्रकुर्वन्ति येऽधमाः कृपया विना।
निन्द्या दुष्टाशयास्तेऽपि मज्जन्ति श्वभ्रसागरे।।३४६।।

अर्थ—जो नीच मनुष्य निर्दय होकर मांस भक्षण करते हैं वे निन्द्य हैं, दुष्ट आशय वाले हैं तथा वे भी नरक रूप समुद्र में डूबते हैं।।३४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्मामिषं हि यो दुष्टो भुङ्क्ते तस्य पलं स वै।
हत्वामुत्र च रोषेण तस्मात्त्वं त्यज पापदम्।।३४७।।

अर्थ–जो दुष्ट जिस जीव के मांस को खाता है निश्चय से वह परभव में क्रोधवश उसे मारकर उसका मांस खाता है इसलिये तूं इस पाप प्रद व्यसन को छोड़।।३४७।।

अशुचिगृहमसारं जीवहिंसादिजातं
कृमिकुलशतपूर्णं सत्करस्याप्ययोग्यम्।
विबुधजनविनिन्द्यं पापदुःखादिमूलं
कुकुलजनगृहीतं चामिषं त्वं त्यजाशु।।३४८।।

अर्थ–तूं उस मांस को शीघ्र ही छोड़ जो कि अपवित्रता का घर है, असार है, जीव हिंसा आदि से उत्पन्न होता है सैकड़ों कृमिकुलों–कीड़ों के समूह से भरा है, सत्पुरुषों के हाथ में लेने के भी अयोग्य है, विद्वज्जनों के द्वारा निन्दनीय है, पाप तथा दुःखों का मूल कारण है तथा नीच कुलीन मनुष्य ही जिसे ग्रहण करते हैं।।३४८।।

मद्यव्यसनं त्यज

पीतमद्यो भवेन्निन्द्यः पथि श्वा पततो मुखे।
मूत्रं कृत्वा च लिह्यास्य यं धिक् तस्यास्तु जीवितम् ।।३४९।।

अर्थ–मदिरा पीने वाला मनुष्य निन्दनीय है। मद्य पायी मनुष्य मार्ग में पड़ जाता है, कुत्ते उसके मुख में पेशाब कर उसका मुख चांटते हैं अतः उसके जीवन को धिक्कार हो।।३४९।।

विवेकविकल कृत्वा पीतं मद्यं कुजन्मदम्।
पापं हिंसान्यरामादिजातं श्वभ्राधिपो भवेत्।।३५०।।

अर्थ–पी हुई मदिरा मनुष्य को विवेकहीन कर नाना कुयोनियों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देती है। हिंसा तथा परस्त्रीसेवन आदि पाप मद्यपायी के स्वयं प्रकट हो जाते है तथा वह मर कर नरकवासी होता है।।३५०।।

वेश्याव्यसनं त्यज

पलमद्यादिसक्ताञ्च मातङ्गादिषु लम्पटाम्।
वेश्यां भजन्ति ये मूढा निन्द्यास्ते भुवनत्रये।।३५१।।

अर्थ—मांस मदिरा आदि में आसक्त तथा चाण्डाल आदि में लम्पट वेश्या का जो मूर्ख मनुष्य सेवन करते हैं वे तीनों लोकों में निन्द्य होते हैं।।३५१।।

वेश्यादिपरनारीषु सङ्गं कुर्वन्ति येऽधमाः।
श्वभ्रे लोहाग्निरामाभिस्तेषामालिङ्गनं भवेत्।।३५२।।

अर्थ—जो नीच पुरुष, वेश्या आदिक परस्त्रियों का सङ्ग करते हैं नरक में लोह निर्मित एवं अग्नि संतप्त पुतलियों द्वारा उनका आलिङ्गन होता है।।३५२।।

सकलकुलजनसेव्यां श्वभ्रधामप्रतोलीं
विकटसुखविकारां मद्यमांसादिसक्ताम्।
बुधजनपरिनिन्द्यां तस्करीं धर्मभाण्डे
त्यज कुगतिकरीं भो दूरतो मित्र वेश्याम्।।३५३।।

अर्थ—जो समस्त नीच मनुष्यों के द्वारा सेवनीय है, नरक रूप घर का मार्ग, सुख को अत्यन्त विकृत करने वाली है, मद्य मांस आदि में आसक्त है, विद्वज्जनों के द्वारा अत्यन्त निन्द्य है, धर्म रूपी धन को चुराने वाली है तथा कुगति को करने वाली है उस वेश्या को हे मित्र तू! दूर से ही छोड़।।३५३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आखेटव्यसनं त्यज

तृणेन स्पृष्टमात्रेऽपि किञ्चिद् दुःख मवैति यः।
हन्ति शस्त्रेण जीवादीन् कथं श्वभ्राधिपो न सः।।३५४।।

अर्थ—तृण का स्पर्श होने मात्र से जो दुःख का अनुभव करता है वह शस्त्र से दूसरे जीव आदि का कैसे घात करना है? और ऐसा जीव नरक का स्वामी कैसे नहीं होता अर्थात् अवश्य होता है।।३५४।।

सबलो दुर्बलस्यापि हन्ति यो यस्य सोऽत्र च।
सहेत वेदनां घोराममुत्र तत्कृतां ध्रुवम् ।।३५५।।

अर्थ—जो सबल मनुष्य इस लोक में जिस दुर्बल मनुष्य का घात करता है वह परलोक में उसके द्वारा की हुई भयंकर वेदना को नियम से भोगता है।।३५५।।

चौर्यव्यसनं त्यज

स्वद्रव्ये हि गते स्वल्पे यो दुःखी जायत भृशम्।
परद्रव्यं स गृहणाति न स्यात् किं श्वभ्रनायकः।।३५६।।

अर्थ—अपना थोड़ा सा धन चले जाने पर जो अत्यन्त दुखी होता है वह पर धन को ग्रहण करता है सो ऐसा करने वाला नरक का स्वामी क्यों नहीं होगा? अवश्य होगा।।३५६।।

परद्रव्यापहारेण लभ्यते वधबन्धनम्।
घोरदुःखमिहामुत्र परस्वं त्यज सर्प्पवत्।।३५७।।

अर्थ—पर धन का अपहरण करने से इस लोक में बध बन्धन प्राप्त होता है तथा पर लोक में घोर दुःख भोगना पड़ता है इस लिये तू सर्प के समान पर धन का त्याग कर।।३५७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्त्री व्यसनं त्यज

परस्त्रीसङ्गमासवता येऽधमा नष्टबुद्धयः।
वधबन्धादिकं प्राप्य श्वभ्रे ते यान्ति सप्तमे।।३५८।।

अर्थ—जो नष्ट बुद्धि नीच पुरुष, पर स्त्री के संग में आसक्त रहते हैं वे वध बन्धन आदि को प्राप्त कर सातवें नरक में जाते हैं।।३५८।।

दुरिततरुकुवृष्टिं तस्करीं धर्मगेहे।
नरकगृहप्रतोलीं कीर्तिवृक्षे कुठारीं
[१]यतिपतिततिनिन्द्यां बुद्धिमद्भिः प्रहेयां
त्यज सकलपरस्त्रीं त्वं सदा मुक्तिहेतोः।।३५९।।

अर्थ—जो पाप रूपी वृक्ष को हरा भरा करने के लिये कुवृष्टि स्वरूप है, धर्म रूपी घर की चोर है, नरक रूपी घर की मार्ग है, कीर्ति रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ा है, बड़े बड़े मुनियों के समूह जिसकी निन्दा करते हैं और बुद्धिमान् मनुष्य जिसे छोड़ने के योग्य मानते हैं उस समस्त प्रकार की परस्त्री को तूं मुक्ति प्राप्ति के हेतु सदा के लिये छोड़।।३५९।।

सप्तव्यसनत्यागसंदर्भोपसंहारः

द्यूतमांससुरावेश्याखेटचौर्यपराङ्गनाः।
त्यज त्वं व्यसनान्येव स्युः सप्त श्वभ्रादानि वै।।३६०।।

अर्थ—जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री ये सात व्यसन निश्चय से नरकों को देने वाले हैं इसलिये इनका त्याग कर।।३६०।।

१. कोष्ठकान्तर्गतः पाठः संपादकेन मेलिनः) मूल प्रतौ त्रुटितोऽयं भागः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तैव हि नरकाणि व्यसनान्यपि सप्त वै।

अनुक्रमेण गच्छन्ति जीवास्तल्लम्पटाशयाः।।३६१।।

अर्थ—सात ही नरक हैं और सात ही व्यसन हैं। अतः उन व्यसनों में लम्पट जीव अनुक्रम से उन सात नरकों में जाते हैं।।३६१।।

एकैकव्यसनासक्ता नष्टा जीवा अनेकधा।

ये सप्तव्यसनासक्तास्ते किं यान्ति न दुर्गतिम्।।३६२।।

अर्थ—एक एक व्यसन में आसक्त रहने वाले अनेक प्रकार के जीव नष्ट हो चुके हैं फिर जो सातों व्यसनों में आसक्त है वे दुर्गति को क्यों नहीं प्राप्त होंगे? अवश्य होंगे।।३६२।।

योग्यमाचरत्वम्

अष्टम्यामुपवासं यो विधत्ते भावपूर्वकम्।

हत्वा कर्माष्टकं सोऽपि याति मुक्तिपदं ध्रुवम्।।३६३।।

अर्थ—जो भाव पूर्वक अष्टमी के दिन उपवास करता है वह भी आठों कर्मों को नष्ट कर नियम से मुक्ति पद को प्राप्त होता है।।३६३।।

उपवासं विधत्ते यश्चतुर्दश्यां स वै व्रजेत्।

चतुर्दशगुणस्थान मुल्लङ्घयाहो परं पदम्।।३६४।।

अर्थ—जो चतुर्दशी के दिन उपवास करता है वह चतुर्दश गुण स्थानों को उल्लंघ कर परम पद मुक्ति को प्राप्त होता है।।३६४।।

मासे मासे विधातव्याश्चतुपर्वसुप्रोषधाः।

प्राणान्तेऽपि न मोक्तव्या बुधैः स्वमुक्तिकारिणः।।३६५।।

अर्थ—विद्वानों को प्रत्येक माह के चारों पर्वों दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिन एकाशन करना चाहिये और प्राणान्त होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये। ये एकाशन अपनी मुक्ति को करने वाले हैं—मोक्षप्राप्ति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण हैं॥३६५॥

हिंसादिगृहव्यापारं त्यक्त्वा प्रोषधं चरेत्।
एकं सोऽपि चिरं पापं सञ्चितं हन्ति शुद्धधीः॥३६६॥

अर्थ—जो हिंसादिक घर सम्बन्धी व्यापार को छोड़ कर एक भी प्रोषध करता है वह शुद्धबुद्धिवाला पुरुष भी चिर काल के संचित पाप को नष्ट कर देता है॥३६६॥

हिंसादिकमसंत्यज्य चोपवासं करोति यः।
गजस्येव वृथा खेदः पापं किं याति तस्य भोः॥३६७॥

अर्थ—जो मनुष्य हिंसादिक पाप को छोड़े बिना उपवास करता है उसका उपवास सम्बन्धी खेद हाथी के समान व्यर्थ जाता है। हे भाई! ऐसे जीव का पाप क्या नष्ट होता है? नहीं होता।

भावार्थ—जिस प्रकार हाथी स्नान कर अपने शरीर पर पुनः धूलि डाल लेता है इसलिये स्नान करने का खेद परिश्रम व्यर्थ जाता है इसी प्रकार का मनुष्य का उपवास सम्बन्ध खेद व्यर्थ जाता है॥३६७॥

यः सादि वृत्तं त्यक्त्वा कुधीः पुनः।
कुर्यात्कामादिसंसेवां स स्याच्छ्वभ्राधिवो ध्रुवम्॥३६८॥

अर्थ—जो कुबुद्धि मनुष्य, पर्व के दिन उपवासादिक चारित्र को छोड़ कर कामादि का सेवन करता है वह निश्चित ही नरक का स्वामी होता है॥३६८॥

जिनालयं यथा शिल्पी कुर्वन्नुच्चैः पदं व्रजेत्।
कुपादिखननाच्चाधस्तद्वत् स्वामिनां गतिः॥३६९॥

अर्थ—जिस प्रकार जिन मन्दिर को बनाता हुआ कारीगर उच्च पद को प्राप्त होता है और कुंआ आदि को खोदने वाला कारीगर नीच पद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को प्राप्त होता है उसी प्रकार जो धनवान् उच्च कार्य करता है वह उच्च पद स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त करता है और जो नीच कार्य करता है वह नीच पद नरक गति को प्राप्त करता है। इस प्रकार धनवानों की गति कारीगर के समान जानना चाहिये।।३६९।।

भिन्न-भिन्ने समुत्पन्ना देशे जातौ कुलेऽपि ये।
जिनस्य शासने भक्ता वान्धवास्ते मता बुधैः।।३७०।।

अर्थ—भिन्न भिन्न देश जाति और कुल में उत्पन्न जो मनुष्य जिन शासन के भक्त हैं वे विद्वानों के द्वारा परस्पर भाई माने गये हैं।।३७०।।

सधर्मिणा समं रागं द्वेषं कुर्वन्ति ये च ते।
दुष्टाशया महानिन्द्या ज्ञेया मिथ्यादृशोऽधमाः।।३७१।।

अर्थ—जो मनुष्य सहधर्मी भाई के साथ राग द्वेष लड़ाई झगड़ा आदि करते हैं वे दुष्ट अभिप्राय वाले महा निन्दनीय हैं नीच मिथ्यादृष्टि जानने के योग्य हैं।।३७१।।

नियमोऽन्नादने कुर्याद् रात्रौ पर्वणि चावधौ।
यावज्जीवं खवश्यार्थं स्वर्गमुक्तिसुखाय वा।।३७२।।

अर्थ—रात्रि के समय पर्व के समय, अन्य अवधि के समय अथवा जीवन पर्यन्त के लिये इन्द्रियों को वश करने के अर्थ तथा स्वर्ग और मोक्षसुख के हेतु भोजन विषयक नियम करना चाहिये।।३७३।।

इन्द्रियसुखनिरुत्सुको भव

सद्दृष्टिजीवाः कृतवृत्तदाना मुक्तिं समिच्छिन्ति न चान्यसौख्यम्।
बीजं वपेद् भूरिफलं कुटुम्बी यथा समीहेत तृणादिकं न।।३७३।।

अर्थ—चारित्र तथा दान को करने वाले सम्यग्दृष्टि जीव मुक्ति की इच्छा करते हैं अन्य सुख की नहीं। क्योंकि जिस प्रकार गृहस्थ बीज बोता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तो उससे बहुत भारी फल की इच्छा करता है तृणादिक की नहीं।।३७३।।

तत्सौख्यं यत्र नासौख्यं सा गतिर्यत्र नागतिः।

तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं भ्रातस्त्वं भज शाश्वतम्।।३७४।।

अर्थ—सुख वह है जिसमें दुःख नहीं है, गति वह है जहाँ से फिर आता नहीं है और ज्ञान वह है जिसमें अज्ञान नहीं है। हे भाई! तू शाश्वत सुख, शाश्वत गति और शाश्वत ज्ञान की उपासना कर।।३७४।।

इन्द्रचक्रादिजं सौख्यं मन्तव्यं हि विनश्यति।

ततोऽस्माभिर्न तत्प्रार्थ्यं मुक्तिसौख्येन पूर्यताम्।।३७५।।

अर्थ—ऐसा मानना चाहिये कि इन्द्र और चक्रवर्ती आदि का सुख विनष्ट हो जाता है इसलिये हमें उसकी प्रार्थना नहीं करना चाहिये किन्तु इसके विपरीत यह प्रार्थना करना चाहिये कि हमें मुक्ति सुख की पूर्णता प्राप्त हो।।३७५।।

सा नारी परिणोतव्या या न मृत्युवशं गता।

प्रार्थ्या मित्र! गणाधीशैस्तपोयमदयादिकैः।।३७६।।

अर्थ—हे मित्र! गणधरों को तप, यम तथा दान आदि के फल स्वरूप यह प्रार्थना करना चाहिये कि हमारे द्वारा वह (मुक्त) नारी विवाह के योग्य है जो कभी मरती नहीं है।।३७६।।

यत्सौख्यं त्रिदशेश्वरैर्नृखचरैश्चक्रैश्वरैर्भोगिभि

र्भूतं भावि च वर्तमानविषयं भुक्तं च पिण्डीकृतम्।

तत्सौख्यमन्तरहितं सिद्धा विमुञ्जन्त्यहो

भ्रातस्त्वं भज चैकचित्तसहितः सत्सौख्य मिष्टं यदि।।३७७।।

अर्थ—इन्द्र मनुष्य विद्याधर चक्रवर्ती और धरणेन्द्रों ने भूत भविष्यत् और वर्तमान में जो सुख भोगा है उस सबको इकट्ठा किया जाय उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इकट्ठा किये हुए सुख से भी अनन्तगुणित सुख, सिद्ध परमेष्ठी सदा भोगते हैं इसलिये हे भाई! यदि तुझे इष्ट है तो तूं एकचित्त होकर उसी समीचीन सुख की सेवा कर॥३७७॥

अन्तिम मङ्गलम्

त्रिभुवनपतिपूज्यो गर्भकल्याणसारे
सुरगिरिशिखरे यः स्नापितो जन्मजाते।
चरणग्रहणकाले ज्ञाननिर्वाणयोगे
भवतु सुखकरो वो वीतरागो गुणौघः॥३७८॥

अर्थ—गर्भ कल्याणक के समय तीन लोक के स्वामियों इन्द्र चक्रवर्ती और धरणेन्द्रों ने जिनकी पूजा की थी, जन्म कल्याणक के समय सुमेरु पर्वत की शिखर पर जिनका अभिषेक हुआ था, चारित्र ग्रहण (तप कल्याणक) ज्ञान तथा निर्वाण प्राप्ति के समय भी जिनकी पूजा हुई थी, और जो गुणों के समूह थे वे वीतराग जिनेन्द्र तुम सबके लिए सुख कारी होवें॥३७८॥

अमरपतिसुसेव्यो लोकनाथः शरण्य
प्रकटकृतसुधर्म्मः पूर्व पूर्वे विदेहे
मुनिगणधरसेव्यो वर्तमानेऽपि काले
विमलगुणसमुद्रः पातु सीमन्धरो वः॥३७९॥

अर्थ—जो इन्द्रों के द्वारा सेवनीय हैं, लोक के नाथ हैं, शरण देने में दक्ष हैं, जिन्होंने पूर्व विदेह क्षेत्र में समीचीन धर्म को प्रकट किया है जो वर्तमान काल में भी मुनि तथा गणधरों से सेवित हैं और निर्मल गुणों के सागर हैं वे सीमन्धर स्वामी तुम सबकी रक्षा करें॥३७९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागा यस्य न सन्ति केचिदपि सद्वस्त्रादिसंगोज्झना-
दस्त्रादेः परिवर्जनाच्च विविधा द्वेषावतारा गताः
तेनास्तीह जिनस्य चार्थसहिता श्रीवीतरागाभिधा
सद्देवेन्द्रसमर्च्चितोऽतिविमलो वो वीतरागोऽवतात्।।३८०।।

अर्थ—समीचीन वस्त्रादि परिग्रह का त्याग कर देने से जिनके कोई भी किसी प्रकार का राग नहीं हैं, तथा अस्त्र आदि के छोड़ देने से जिनके नाना प्रकार के दोषों के अवसर समाप्त हो गये हैं इसलिये जिनका वीतराग यह नाम सार्थक है, जो उत्तम देवेन्द्रों के द्वारा पूजित हैं, तथा अत्यन्त निर्मल हैं वे वीतराग जिनेन्द्र तुम सब की रक्षा करें।।३८०।।

नाभेयादिजिनेश्वराश्च विमलाः ख्याताः परे ये जिना
स्त्रैकाल्ये प्रभवा व्यतीतगणनाः सौख्याकरः सौख्यदः।
ये सिद्धा अमलास्तथान्तररहिता सर्वे मुनीन्द्रेश्वरा
ये ते सर्वगुणप्रदाश्च महितां कुर्वन्तु बोधिं मम।।३८१।।

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव को आदि लेकर अन्य प्रसिद्ध तथा कर्मफल से रहित जो तीर्थंकर हुए हैं, सुख की खान तथा सुख के देने वाले तीन काल सम्बन्धी जो अनन्त हैं तीर्थंकर हो चुके हैं कर्ममल से रहित जो अनन्त सिद्ध परमेष्ठी हैं तथा समस्त गुणों को प्रदान करने वाले जो मुनिराज हैं वे सब हमारे रत्नत्रय को प्रशस्त करें।।३८१।।

समुपसंहारः

सुभाषितमय ग्रन्थ धर्मसंवेगकारणम्।
पठन्तु भोमहाभव्याः स्वर्गमुक्ति सुखप्रदम्।।३८२।।

अर्थ—हे महाभव्य जन हो! धर्म और संवेग के कारण तथा स्वर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मोक्ष सुख के देने वाले इस सुभाषित मय ग्रन्थ को पढ़ो।।३८२।।

सुभाषितमहारत्नकण्ठिकां य करोति सः।

स्वकण्ठे मुक्तामारणो भाति धर्मसभादिषु।।३८३।।

अर्थ–जो पुरुष सुभाषित रूपी रत्नों की कण्ठी को अपने कण्ठ में धारण करता है वह अन्य आभरणों से रहित होने पर भी धर्म सभा आदि स्थानों में सुशोभित होता है।।३८३।।

सुभाषताख्यं परम हि ग्रन्थं पठन्ति ये भव्यजनाः सदेति

निश्चित्य धर्मं पुनराचरित्वा स्वर्गं व्रजित्वापि च यान्ति मुक्तिम्

अर्थ–जो भव्यजन इस सुभाषितावली नामक ग्रन्थ को सदा पढ़ते हैं तथा धर्म का निश्चय कर तदनुसार आचरण करते हैं वे स्वर्ग जाकर पश्चात् मुक्ति को प्राप्त होते हैं।।३८४।।

अक्षरस्वरमात्रादिच्युत किंचिन्मयोदितम्।

प्रमादाज्ञानतः सर्वे क्षमां कुर्वन्तु साधवः।।३८५।।

अर्थ–यदि प्रमाद या अज्ञान से हमारे द्वारा अक्षर स्वर तथा मात्रा आदि से च्युत कुछ कहा गया हो तो सज्जन पुरुष उस सबको क्षमा करें।।३८५।।

ग्रन्थ संग्रह मिम मुनिनाथा दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः।

शोधयन्तु तनुशास्त्रधरेण सद्दिशाम्बरधरेण कृत तु।।३८६।।

अर्थ–मुझ अल्प ज्ञानी दिगम्बर के द्वारा रचित इस संग्रह ग्रन्थ को दोषों के समूह से रहित बहु ज्ञानी मुनिराज शुद्ध करें।।३८६।।

जिनवरमुखजातं ग्रन्थितं श्रीगणेन्द्रै–

त्रिभुवनपतिसेव्यं विश्व तत्त्वैकदीपम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमृतमिव सुमिष्टं धर्मबीजं पवित्रं

सकलजनहितार्थं ज्ञानतीर्थं हि जीयात्।।३८७।।

अर्थ—जो 'जिनेन्द्र भगवान् के मुख से उत्पन्न हुआ है, गणधर भगवान् ने जिसे शास्त्र रूप में गुम्फिन किया है, जो तीन लोक के स्वामियों के द्वारा सेवनीय है, समस्त तत्वों को प्रकाशित करने के लिये आईतयि दीषक है, अमृत के समान अत्यन्त मिष्ठ है, धर्म का बीज है, पवित्र है, और समस्तजनों का हित करने वाला है ऐसा यह ज्ञानतीर्थ जयवन्त रहे।।३८७।।

आदित्यस्य गतागतै रहरहः संक्षीयते जीवितं

व्यापारैर्बहु कायरभारगुरुभिः कालोवपि न ज्ञायते।

दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।।३८८।।

अर्थ—सूर्य के गमन आगमन से प्रतिदिन आयु क्षीण हो रही है, बहुत कार्यों के भार से गुरुतर व्यापारों के कारण समय का भी ज्ञान नहीं होता, जन्म जरा की पीड़ा तथा मृत्यु को देखकर भय भी उत्पन्न नहीं होता इससे जान पड़ता है कि यह संसार मोह रूपी तेज मदिरा को पीकर उन्मत्त हो रहा है।।३८८।।

इति भट्टारक भी सकलकीर्ति विरिचतः

**सुभाषितावली ग्रन्थः समाप्तः।*

---

*सुभाषिरत्नावली वली' इत्यपि पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तकान्तरे

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम्।
मङ्गल सर्वलोकानां भूमौ भूषति मङ्गलम्।।
बिन्दुमात्राक्षरन्यासः प्रमादाद् यदि विस्मृतः।
तत्सर्वमपराध मे क्षमां कुर्वन्तु साधवः।।
यावन्मेरु धरापीठे यावच्चन्द्र दिवाकरौ।
वाच्यमानं बुधैस्तावच्चिरं नन्दतु पुस्तकं।।

❋ ❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

सुभाषितावली की अकारादि क्रम से श्लोकानुक्रमणिका

अ

अहंकारं त्यजेद् धीमान् १
अहंकारोऽपि कर्तव्यः १
अहिंसाव्रतसारेण १
अदत्तपरिहारेण १
अपात्रदानजं दोषं १
अतुल गुणनिधानं १
अन्धकूपे वरंक्षिप्तं १
अङ्गुष्ठमात्रजिनदेव १
अङ्गसुपात्रदानेन २
अन्धाः कुब्जक वामना १
अनेक वस्त्रतमबूलैः १
अभ्यर्थयामि हे जिह्वे १
अङ्गुलीस्फोटनं हास्यं १
अञ्जलिद्वयधान्यंहि १
अर्थ प्राप्य न शक्यते १
अन्ध एव वराकोऽसौ १
अन्या माता पिताचान्यः १
अन्यो जीवो भवेद्यत्र १
अमरपति सुसेव्यो १
अमलगुणनिधानं १
अमेध्यभक्षणं श्रेष्ठ १
अक्षरस्वरमात्रादि १
अशुचिगृहमसार १
अज्ञानाद् यत्कृतं पापं १
अम्बुधौनष्टरत्नं वा १
अष्टम्यामुपवासंयो १

आ

आर्जवं सकल धर्मकारणं १
आदित्यस्य गतागतैरहरः १
आशां न कुरुते मुक्तौ १
आशां दुर्गति प्रापणौक १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इ

इन्द्रचकादिजंसौख्यं १

इन्द्रियतस्कर दुर्धरा १

इन्द्रियतस्कर दुर्धरा १

इन्द्रियाहारकायादि १

इन्द्रियाणि न शक्नोति १

इन्द्रियाणि न गुप्तानि १

इन्द्रियैतस्करैर्लोको १

उ

उपसर्गेच दुर्भिक्षे १

उपवासं विधत्तेय: १

ए

एकचित्तेन यो धीमान् १

एकत्र वसतिः शलाध्या १

एकैकव्यसनासक्ता १

एको धर्ममुपार्जनं १

औ

औषधं यो मुनीनां सः ४९

औषधं परम ज्ञेय १

क

कचकुटिलमुखं हि १

कर्कशं निष्ठूरं निन्द्यं १

कटिसूत्र परित्यज्य १

कर्मत्वं जहि दुःखशोक १

कर्मपर्वतनिपातनवज्रं १

कर्मायत्तेजने शत्रौ १

करोति सत्तपो यस्तु १

कामक्रोधादिशत्रूणां १

कामवाणविषमेण १

कामनलमहादाहो १

कामी करोति यत्कर्म १

कालत्रयेऽपि यः पूजाँ १

किं जीवितेन कृपणस्य १

कुगतिगमन मार्गं १

कुटुम्बपरिवारादि १

कुटुम्बधनधान्यादि १

कुटुम्बमहितं ज्ञेयं १

कुष्ठपित्तप्रकोपादि १

कुटद्रव्यमिवासारं १

केचित्पुण्यमपार्जयन्ति १

क्रोधानलमहादाहः १

क्रोधशत्रुरति दुःखदीनृणां १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ख

खचरनसमग्रैः १

ग

गव्यूतिं हि व्रजन् ग्रामं १
ग्रन्थसंग्रहमिमं मुनिनाथ १
गुणिनां सङ्गम प्राप्य १
गुरुदेवादिशास्त्राणि १
गुरुत्वं मेरुवत् प्राप्तः १
गृहव्यापुरजं पापं १
गृहव्यापारजं पापं १
गृहव्यापारसंसको १
गो हेमाङ्गजवाजिभूमि १
गोरचमावृतं धीर! १

घ

घण्टा श्रीजिनदेवस्य १
घृतकुम्भो यथा शुद्धो १
घोरोपसर्गसंपाते १

च

चक्रवर्त्यादिलक्ष्मीं हि १
चन्द्रोपकं जिनेन्द्रस्य १
चारित्रासनमासीनो १
चारित्र चलितो जीवो १
चित्रादिनिर्मिता नारी १
चैत्यालय यः कुरुते १
चौरसंसर्गतो यद्वत् १

ज

जातश्चैकोमृतश्चैक १
जपन्ति ये न मन्त्रेशं १
जातिहीनो भवेदर्च्यो १
जिनस्मरणमात्रेण १
जिनस्याग्रं घृतं येन १
जिनपूजां न यः कुर्यात् १
जिनवरमुखजातं १
जिनधीशं नमस्कृत्य १
जिनालय यथा शिल्पी १
जिनेश्वरमुखोत्पन्नं १
जिनेन्द्रेच गुरौ शास्त्रे १
जिह्वाख्यासर्पिणी नित्यं १
जिह्वावशं न यः कुर्यात् १
जिह्वां भी बुध सर्वभक्षण १
जीवन्तोऽपि मृता ज्ञेया १
जीवितव्यं वरं चैकं १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवहिंसादिसकल्पं १
जीवहिंसासमं पापं १
ढौकयेच्च फल कश्चित् १

त

तत्सौख्यं यत्र नासौख्यं १
तपः पूजासुदानानि १
तपः करोति यो धीमान् १
तप श्चरित्रधर्मादि १
तपसालकृतो जीवो १
तपोज्ञानदिसंभूतो १
तपो हीनो नरो ज्ञयः १
तावत्तपो व्रतं ध्यानं १
तावद् धत्ते पर मानं १
तां जिह्वां सफलां मान्ये १
तिलमात्रसुखार्थं हि १
तिलमात्रसमे कन्दे १
तिलोपमं सुखं प्राप्य १
तीर्थनाथ श्चतुर्ज्ञान १
तृणेन स्पृष्टमात्रेऽपि १
ते नेत्रे सफले मन्ये १
तैरैवसफलं चक्रे १
तौ कर्णौ सफलौ ज्ञेयौ १
तौ हस्तौ सफलौ स्यातां १

द

दयासमो नास्त्यपरस्तु १
दर्शनज्ञानवृत्तेन १
दशकीट पतङ्गादि १
द्रव्यं दुःखेन चायति १
दाढिकाया श्च व्याजेन १
दारा दुर्गतिदानमार्ग १
दानं पूजातपश्चैव १
दानं त्वं कुरु पात्रसार १
दिनं प्रति त्वया वत्स १
दीक्षामादाय यो नित्यं १
दुरिततरु सुनीरं १
दुरितकुरुहकन्द १
दुरतिरु कुबृष्टि १
दुःखाकर दुगतिदानदक्षं १
दुःखे सुखे चाब्धिभये १
दृष्ट्रवास्त्रीसुशरीर १
दृष्टिहीनाऽपि वारैकं १
देवशास्त्रगुरुणां भो १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव द्रव्येषु यो वृद्धो १
देवादेवचारो यः १
द्वेषं त्यक्तुमशक्तो यः १
देहं पुष्णाति यो मूढो १
द्वौ देवौ सेवेते मूढो १
द्यूतक्रीडां प्रकुर्वन्ति १
द्यूतमांससुरा वेश्या १

ध

धनाधन्यादि वस्त्वर्थं १
धन धान्यादिकं सर्वं १
धन्या स्ते व्रतदानतत्पर १
धर्मवतो हि जीवस्य १
धर्मरत्नमहाय तस्करी १
धर्मेण पुत्र पौत्रादि १
धर्मं विना न नेतव्या १
धर्मं दानं च कुर्वन्ति
धर्मं ज्ञानं च चारित्रं १
धर्मं सम्बलतः स्वर्ग १
धर्मं करोति यो नित्यं १
धर्मं त्वं कुरु दुस्त्यज १
धर्मात्सम्बलतो नृदेव १
धीरत्वं भज सवकाल १
धीरत्वे सति मृत्युश्च १

न

नयनाभ्यां न पश्येत् १
नरकगृहकपाटो १
नवद्वारैः स्त्रवद् देहं १
नश्यन्ति येन धर्मेण १
निर्ग्रन्थसेवकी धीमान् १
नित्य करोति पापं १
नित्य संक्षीयते चायुः १
नियमेन विना प्राणी १
नियमेन विना पुंसां १
नियमोऽन्नदाने कुर्यात् १
नाभेयादिजिनेश्वराश्च १
नीचदेव रतो जीवो १
नारीशृङ्खलसम्बद्धः १
नेत्रे यस्य जिनस्य १
नैव भोगं त्यजेद्यस्तु १

प

पन्थानौ द्वौ न गम्येते १
परस्त्रीसङ्गमासक्ता १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परद्रव्यतिस्तोकं १
परद्रव्यं समादते १
पररद्रव्यापहारेण १
पलमद्यादिसक्ताश्च १
पलाशन प्रकुर्वन्ति १
पशुरेव स विज्ञेयो १
परिग्रहप्रमाणेन १
परिग्रहमहाभरं १
परिग्रहग्रहग्रस्तः १
परीषहकषायादि १
पापं शत्रुं परं विद्धि १
पापं लुम्पति धर्मशास्त्र १
पापवतो हि नास्त्यस्य १
पात्रदानेन सद्दृष्टिः १
पापेन दुःखदारिद्रव्य १
पीतमद्यो भवेन् निन्द्यः १
पुत्रमित्रकलत्रादि १
पूर्वं शोषयते गात्र १
पूजां विना न पूर्येत १
पूजादानुं तपों धर्म १
प्रातः श्रीजिनवन्दनादि १२
प्रार्थयन्ति न सद्भोगान् १
प्राणान्तेऽपि न वक्तव्यम् १

ब

ब्रह्मचर्यं भवेत्सारं १
ब्रह्मचर्यमपि पालय १
ब्रह्मचर्यविकलो हि १
बालत्वेऽपि न यः कुर्याद् १
बिन्दुमात्राक्षरन्यासः १
बुधजनपरिसेव्यं १

भ

भवे मानयते सौख्यं १
भावहीनस्य पूजादि १
भावना सहितः प्राणी १
भावे दानं व्रतं पुण्यं १
भ्रातस्त्वं कुरु धर्मसार १
भिन्ने भिन्ने समुत्पन्ना १
भेकः स्वर्गोऽमरो जातः १
भोगेनापि विना रागी १
भोग भूमौ समुत्पन्ना १

म

मधुभुङ्क्ते विन्दुमात्रं यो १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मङ्गल लेखककानां च १
मद्यकुम्भो यथा शुद्धो १
मन्यो देहं तदेनाहं १
मन्ये स एव पुण्यात्मा १
मातपितृ कुटुम्बादि १
मायायुक्तं वचस्त्याज्यं १
मायां करोति यो मूढः १
मांसपिण्डौ स्तनौ स्त्रीणां १
मासे मासे विधातव्याः १
मानुष्यं दुर्लभ प्राप्य १
मानुषं दुर्लभ प्राप्य १
मिथ्यात्व सदृशं पापं १
मिथ्यात्वेन भृतो जीवः १
मित्रशत्रू च विज्ञेयौ १
मुखं श्लेष्मादि संसक्तं १
मूढ़ः शोकाकुलो भूत्वा १
मूढ़ाः कुर्वन्ति ये मे मे १
मृते स्वजनमात्रेऽपि १
मृत्युस्तथा समाराध्य १
मृत्युकाले विषोढव्याः १
मेघनीरंयथा भूमि १

य

यत्सौख्यं त्रिदशेश्वरैः १
यत्संग्रामकरीन्द्र वह्नि १
यत्किञ्चित् कुरुते १
यमदमशमजात १
यदि कश्चित् कुधोः कुर्यात् १
यथाग्निज्वलिताद्गेहात् १
यथा घाट्या भयेनेव १
यथाणुभिः परं नाल्पं १
यथाम्रेफलिते नित्यं १
यः स्नानं कुरुते नित्यं १
यः परिग्रहमत्यत्त्वा १
यः परित्यज्य गृह्णाति १
यः सप्तव्यसनासक्ती १
यः पर्वष्पुपवासादि १
यस्तरति स्वयं सोऽन्यं १
यस्य चेतसि वामाङ्गी १
यस्यामिषं हि यो दुष्टो १
यस्मिन्नहनि संजातः १
यत्राचरति सज्ज्ञानी १
यत्रैव देशकालादि १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यावदायुर्न क्षोयेत १
यावन्मेरु धरीपीठे १
ये रात्रौ सत्रमाहारं १
येन वैराग्यखड्गेन १
येषां न पूजा जिनपुङ्गवस्य १
यो ज्ञानदानं कुरुते १
यो रागद्वेषनिर्मुक्तः १
यो मदान्धो न जानाति १
यो निर्ग्रन्थ गुरुं त्यक्त्वा १
यो जिह्वाल्वटो मूढः १
यौवने कुरु भो मित्र १

र

रत्नत्रयं समुच्चार्य १
रागशत्रुशुभो हि १
रागद्वेषमहाजले १
रागं हन्तुमशक्तीयः १
रागी वध्नाति कर्माणि १
रागा यस्य न सन्ति १
रात्रौ योग्यं न नीरंस्यात् १
रोगक्लेश निर्वृत्यर्थं १
रोगक्लेशमदोन्मादैः १

ल

लक्ष्मी बुद्धिकृतज्ञतादि १
लोभ शत्रुरतिदुःसहो १

ब

बरं बिक्षाटनेनैव १
वरं गार्हस्थ्यमेवेह १
वरं प्राण परित्यागो १
वरं पातो महावन्हौ १
वरं दरिद्रं न च दान १
वरं हुताशने पातो १
वरं सर्वमुखे वासो १
वरं मुहूर्त्तमेकं च १
वदत्यत्र जनाग्रेषु १
वार्तादिकरणं क्रोधं १
वाणवृष्टि समाकीर्णो १
विस्मृतं पतितं नष्टम् १
विषानलमहासर्प १
विवेक विकल कृत्वा १
विमल गुणानिधानं १
विषयविरति मूलं १
विमदममर मान्य १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विबुध कुमुदचन्द्रं १
वीतरागे मुनौ शास्त्रे १
वीतरागे मुनौ शास्त्रे १
वीतरागं परित्यज्य १
वृद्धो यः कुरुते ह्याशां १
वेश्यादिपरनारीषु १
वैराग्यसारं मुनिवृन्द १
वैराग्यसारं भज १
वैराग्यत्वमनासाद्य १
व्यसनसकलमूलं १
व्याधि दुःख भराक्रान्त १
व्याघ्रचौरारिसर्पाग्नि १

स

सकलकुजनसेख्यां १
सकल विबुधनिन्द्यं १
सकल दूरितमूलं १
सकल सुखनिधानं १
सकल भव निदानं १
सत्वे त्वं कुरु मित्र १
सत्याचरणाल्लक्ष्मी १
सत्यं हित मितं ब्रूयात् १
सबलो दुर्बलस्यापि १
सम्बलं कुरु रे मूढ १
सम्बल कुरु वै धर्मं १
सद्धर्म यः परित्यज्य १
स सघादिधपति र्ज्ञेयो १
स धर्णिा समं रागं १
सद् दृष्टि जीवाः कृत १
सम्यक्त्वांलकृतिर्यस्य १
सम्यक्त्वं यस्य जीवस्य १
सम्यग्दशरन संशुद्धः १
सप्तधातुमये देहे १
सप्तैव हि नरकाणि १
सर्पिणी खादति स्पर्शनि, १
सर्षपेण समं खादं १
सर्वजीवेषु यो दत्ते १
सर्वजीवोप कारित्वात् १
सर्वषु जीवेषु दयां १
सर्वप्राणदयां जिनेन्द्र १
सा नारी परिणेतव्या १
साधुसङ्गमनासाद्य १
सारसत्यामृतादङ्गी १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारं त्वं कुरु देहमेव १
सन्तोष कुरु सर्वसौख्य १
सन्तोषो न च कर्तव्यः १
संसारे यदि रे मूढ १
संसारेऽत्र दूरन्त दुःख १
संसारसागरे घोरे २
संसाराम्बुधितारकं १
संसाराम्बुधितारिका १
स्तोकं दानं सुपात्राय १
स्वद्रव्ये हि गते स्वल्पे १
स्वल्प श्रीयुतायेऽपि १
स्वयं घर्षति हस्तौ च १
स्वर्ग श्री गृहसारसौख्य १
स्वपरमत विचारं १
स्वाति नक्षत्रं नीरं १
सुरगतिगृहमार्गं १
सुखं दुःखं हित पुण्यं १
सुभाषितमहारत्न १
सुभाषिताख्यं परमं १
सुभाषतामयं ग्रन्थ १

श

शय्याहेतु तृणादानं १
शय्याहेतु तृणादानं १
शरीर दह्यते रोगैः १
शरीरे दुबले येऽपि १
शीलव्रतसमायुक्तः १
शुक्रशोणितसंभ १
शोकं करोति यो मूढो १
श्वभ्रागार इवासारे १
श्रीतर्थेश्वरबिम्बं १
श्रीजिनेश्वर बिम्बस्य १

ह

हस्ति व्याघ्रादि चौराणां १
हिंसादिकमसंत्यज्य १
हिंसादिगृह व्यापारं १
हिंसा श्वभ्र प्रतोलिकां १
हीने संहने दीक्षां १
हीने सहनने जीवो १
हीनेसंहने धीराः १
हृदयं तदहं मन्ये १
हृदये यस्यरामाग्नि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेमवच्च सदा धर्मो १

त्र

त्रिभुवनपति पूज्यो १

ज्ञ

ज्ञान चारित्रयुक्तो यः १

ज्ञान चारित्र सद्धर्म १

ज्ञानाभ्यास परीजीवः १

ज्ञानयुक्तो भवेज्जीवः १

ज्ञानहीनो न जानाति १

ज्ञानेतपसि धर्मेंच १

❋ ❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

प्रथमं चरणं नमः करणं द्रव्यं

कोलकाता

फाउण्डेशन के उद्देश्य

- मूल आर्ष परम्परा का शंखनाद।
- देव-शास्त्र-गुरू के प्रति अगाढ़निष्ठा एवं समर्पण।
- प्राचीन अनुपलब्ध, अप्रकाशित साहित्य का प्रकाशन।
- धार्मिक संस्कार शिविर, श्रावक संस्कार शिविर, विद्वत संगोष्ठियों का आयोजन।
- आगमनिष्ठ विद्वानों एवं विधानाचार्यों का निर्माण एवं समाज के सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन के प्रकल्पों का आयोजन।
- विद्वानों, प्रतिभाओं, पत्रकारों, बुजुर्गों एवं समाज सेवियों का सन्मान

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

1/2 दर्पनारायण टैगोर स्ट्रीट–कोलकाता–700006

मोबाईल – 9831008868, 9903080975

ई-मेल - shantisagar.foundation@gmail.com

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi